स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–22, अंक–5, वैशाख–ज्येष्ठ 2071, मई 2014

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम्, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा – पृष्ठ–6

मई 16, 2014 को चुनाव नतीजे आने के बाद देश में नई सरकार के गठन की उल्टी गिनती शुरू हो चुकी है, लेकिन उसके साथ ही देश की खेती पर आने वाली मुसीबत की आहट भी साथ ही सुनाई देने लगी है। मौसम वैज्ञानिकों का एक बड़ा वर्ग यह मान रहा है कि इस बार भारत को अल्प वृष्टि की समस्या का सामना करना पड़ेगा. . .

कवर पेज

अ नु क्र म

आवरण कथा :
मौसम का मिजाज और दुनिया की मुसीबत
– डॉ. अश्विनी महाजन /6

कृषि
क्या फिर होगी सूखे की मार किसानों पर. . .
– देविन्दर शर्मा /8

जीएम फसल
खतरनाक है जीएम फसल के परीक्षण की मंजूरी
– भारत डोगरा /11

उद्योग
कपड़ा उद्योग में कैसे आएगी जान!
– जयंतीलाल भंडारी /14

सामयिकी
वोट बैंक की सियायत में गढ़ी जा रही है
पंथनिरपेक्षता की नई परिभाषा
– डॉ. सूर्यप्रकाश अग्रवाल /16

लोकतंत्र
देश को है नरेन्द्र मोदी से उम्मीद
– निरंकार सिंह /19

भ्रष्टाचार
कालेधन का कारोबार
– डॉ. भरतझुनझुनवाला /21

सुरक्षा
अपनी नाकामी का ठीकरा दूसरों के सिर पर
– प्रमोद भार्गव /23

पलायन
विस्थापन से बड़ी कोई त्रासदी नहीं
– पंकज चतुर्वेदी /25

पर्यावरण
बिजली–पानी बचाने की हो जुगत
– अरुण तिवारी /27

विचार–विमर्श
सार्वजनिक शिक्षा से विमुख होती सरकार
– महेश चन्द्र पुनेठा /29

अंतर्राष्ट्रीय
अफगानिस्तान का संघर्ष
ब्रह्म चेलानी /36

पाठकनामा/4, समाचार परिक्रमा/31, रपट/38

पाठकनामा

चुनावी दौर में नेताओं के भाषण से किसानों के मुद्दे गायब

लोकसभा चुनाव के दौर में सभी दल अपनी–अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए जोर–शोर से प्रचार करने लगे हुए हैं लेकिन सबसे बड़ी दुख की बात यह है कि आज किसानों की फिक्र कोई भी नेता ध्यान नहीं दे रहा है। जैसे–जैसे चुनावी सफर आगे बढ़ रहा है तो नेता लोग एक–दूसरे पर निजी हमले करने पर भी उतर आए है। एक से एक घटिया शब्दों का इस्तेमाल उनके भाषणों में सुनने को मिल रहा है। आज किसानों के मुद्दे जैसे रेल बजट की तरह कृषि के लिए अलग बजट हो, फसलों के लिए उचित बाजार व्यवस्था हो, कृषि उपज के भंडारण और वितरण का इंतजाम हो, उर्वरक, बीज और डीजल के मूल्यों में हो रही लगातार बढ़ोतरी, किसानों को चार प्रतिशत ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराना और फसलों का बीमा पॉलिसी होना। इन मुद्दों पर किसी भी दल के नेताओं का ध्यान नहीं जा रहा है। जब गाँव बदहाल स्थिति में है तो देश कैसे खुशहाल हो सकता है। अब तक 3.7 करोड़ किसानों ने खेती करना छोड़ दिया है और 50 प्रतिशत किसान कर्ज में डूबे पड़े हैं इसके अतिरिक्त 61 लाख किसान बुंदेलखण्ड इलाके से पलायन कर चुके हैं। इन सभी मुद्दों पर आने वाली सरकार को गौर करने की जरूरत है।

– धूमसिंह बिष्ट, गाँव बैसोड़–सारी, गोचर, उत्तराखण्ड

कब रोकेगी असम में हिंसा का सिलसिला

आज असम फिर से हिंसा की आग झुलस रहा है। हिंसा इस बार उन्हीं इलाकों में फैली है जिन इलाकों में साल 2012 में सांप्रदायिक हिंसा फैली थी। हर बार असम में यह हिंसा क्यों हो रहा है इस पर राज्य सरकार और केन्द्र सरकार विचार नहीं कर रही है वह तो केवल वोट 'बैंक का खेल' खेल रही है। अबकी बार हिंसा लोकसभा चुनाव के दौरान हुई है और तरह–तरह की राजनीतिक जमातें इसके अलग–अलग अर्थ निकाल रही है। लेकिन राज्य सरकार के स्तर पर यह भी समझने की जरूरत है कि जब असम हिंसाग्रस्त क्षेत्र शुरू से ही संवेदनशील माना जाता रहा है तो फिर राज्य सरकार ने कड़े कदम क्यों नहीं उठाए। असम राज्य सरकार अपनी गलती पर पर्दा डालकर दूसरे के सिर पर डालना चाहती है जो ठीक नहीं है।

– मनोज कुमार, सेक्टर–3, रामकृष्णपुरम् दिल्ली

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 15

आजीवन सदस्यता शुल्क:15,00 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित क र ।

या आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740

IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram)

उन्होंने कहा

कुछ लोग मेरी वाणी से डरते हैं लेकिन मैं बता दूं कि मेरा मौन मेरी वाणी से कहीं ज्यादा प्रखर है।

– नरेन्द्र मोदी

चुनाव में राजग को स्पष्ट बहुमत मिलने जा रहा है। हमें 300 से ज्यादा सीटों पर सफलता मिलेगी। नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सरकारी बनाने में कोई कठिनाई नहीं आएगी।

– अमित शाह

इस चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने वाला। ऐसी स्थिति में सपा की अगुआई में तीसरा मोर्चा सत्ता संभालेगा या फिर उसके समर्थन से ही कोई सरकार बन पाएगी।

– मुलायम सिंह यादव

कांग्रेस का नारा है गरीबी मिटाओ, भ्रष्टाचार भगाओं पर भाजपा कहती है कांग्रेस भगाओ।

– सोनिया गाँधी

देश में कांग्रेस विरोधी लहर है जिसे गलत अर्थ लगाकर मोदी लहर बताया जा रहा है।

– प्रकाश करात, माकपा

राजग की सरकार अगर बनती है तो स्वाभाविक रूप से भारत अपने पड़ोसी देश चीन, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश से रिश्ते सुधारना चाहेगा। इन सभी संबंधों में एक मंत्र होगा – भारतीय हित ही सर्वोपरि होगा।

– बलवीर पुंज

आईपीएल के मौजूदा सत्र में अभी तक मैच स्पॉट अथवा मैच फिक्सिंग का कोई विवाद सामने नहीं आया है। यह क्रिकेट के लिए अच्छी खबर है।

– राहुल द्रविण

संपादकीय

देश की साख और रोजगार होगी चुनौती

यूपीए के दस साल के शासनकाल के अंतिम तीन सालों का लेखा–जोखा लें तो देखते हैं कि इन तीन सालों में जीडीपी ग्रोथ लगातार घटती हुई 4.5 प्रतिशत तक पहुंच चुकी है। महंगाई की दर दो अंकों में पहुंच चुकी है। खाने–पीने की चीजों में तो यह महंगाई 17 प्रतिशत तक पहुंच गई।

यूपीए के पुरोधामंत्री दावा करते हैं कि इस कालखंड में ग्रोथ रेट औसत 8 प्रतिशत के आसपास रही और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या कम हो गई और लोगों की हालत सुधरी। लेकिन धरातल पर परिस्थितियां इस बात की गवाही नहीं देती। यूपीए सरकार की सबसे बड़ी नाकामी रोजगार सृजन के क्षेत्र में रही। गौरतलब है कि देश की कार्यशील जनसंख्या में हर साल 1 करोड़ 20 लाख लोग जुड़ जाते हैं। यानि दस सालों में कार्यशील जनसंख्या 12 करोड़ बढ़ गई। लेकिन यूपीए शासन के दस सालों में मात्र 2 करोड़ लोगों को ही रोजगार के अवसर जुटाये जा सके। यानि यूपीए शासन के दौरान इस सालों में बेरोजगारी 10 करोड़ बढ़ गई। यही नहीं रोजगार का स्तर भी गिरा। सरकारी एजेंसी एनएसएसओ के आंकड़ों के हिसाब से वर्ष 2004–05 और 2009–10 के बीच 2 करोड़ 50 लाख स्वरोजगार से बाहर हो गए और साथ ही 2 करोड़ 20 लाख लोग दिहाड़ीदार मजदूरों की श्रेणी में शामिल हो गए। यह इस बात की ओर इंगित करता है कि परंपरागत रोजगार में लगे किसान, कारीगर और छोटा–मोटा धंधा करने वाले दुकान और लघु उद्यमी अपना स्वरोजगार से बाहर होते हुए बढ़ी संख्या में दिहाड़ीदार मजदूर बन गए।

यूपीए सरकार मनरेगा के माध्यम से रोजगार सृजन का दावा करती रही। यह सही है कि बेरोजगारों को इस स्कीम के माध्यम से पैसा बांटा गया, लेकिन इस कार्यक्रम में भी यूपीए सरकार की प्रसिद्धि के अनुरूप गड़बड़ियां देखने में आई। लेकिन मनरेगा रोजगार सृजन का विकल्प कभी नहीं बन सकता। इसका कारण यह है कि हजारों करोड़ों रुपए खर्च करने के बाद भी इससे केवल अस्थायी रोजगार ही मिलता है। जरूरत है ऐसी सरकारी नीति की जिससे गरीब और बेरोजगार को स्थाई और उत्पादक रोजगार के अवसर मिले। इसके लिए उत्पादन के तौर तरीकों को बदलना होगा। आवश्यकता है ग्रामीण और कृषि विकास की। उसके लिए कृषि में पूंजीगत निवेश बढ़ाना होगा साथ ही खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाकर देश को खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बनाना होगा ताकि भुखमरी का स्थायी इलाज हो सके।

चीन से बढ़ते आयातों के साथ–साथ डब्ल्यू.टी.ओ. और क्षेत्रीय व्यापार समझौतों के दबाव में लगातार बढ़ते आयातों के चलते हमारे आयात 500 अरब डॉलर से ज्यादा अर्थात् 30 लाख करोड़ रुपए से ज्यादा पहुंच गए। इसका असर यह है कि अपने पर दबाव बढ़ा और वह एक समय तो 69 रुपए प्रति डॉलर तक पहुंच गया। देश पर कर्ज बढ़ता गया और विदेशों में देश की साख गिरती गई। रुपए के कमजोर होने के कारण हमारी आयातों की लागत भी बढ़ती गई, जिसने महंगाई की समस्या को और भी जटिल बना दिया। हालांकि पिछले एक वर्ष में सोने के आयातों पर कृत्रिम प्रतिबंध लगाने के कारण भुगतान घाटा थोड़ा थमा है, लेकिन यह स्थायी नहीं है। देश में उत्पादन बढ़ाकर, चीन से आयातों पर प्रतिबंध लगाकर और महंगाई को थामते हुए देश के निर्यातों को प्रोत्साहित करके ही हम रुपए की साख को पुनः स्थापित कर सकते हैं।

आज जरूरत इस बात की है कि देश में रोजगार के अवसर बढ़ें, महंगाई रूके, औद्योगिक और कृषि उत्पादन बढ़े, किसानों की हालत सुधरे, महंगाई थमे – खासतौर पर खाने पीने की चीजों की महंगाई, देश पर देशी–विदेशी कर्ज कम हो। चीन से आयातों को कम करने हेतु लघु उद्योगों को पुनर्जीवित करने पर जोर हो, रुपये की इज्जत बढ़े और भारत की गिनती दुनिया के धनी देशों में हो। इसके लिए जरूरी है देश के लोगों की प्रतिभा पर विश्वास करते हुए, एक ऐसी नीति का निर्माण हो। जिसमें विदेशी निवेश का गुणगान न हो, उत्पादन के ऐसे तौर–तरीके हों जिनसे रोजगार बढ़े, आयातों को सीमित करते हुये देश में उत्पादन बढ़े, गैर जरूरी सरकारी खर्चों और लोक लुभावन नीतियों की बजाय सर्वजन हिताय नीति का निर्माण हो।

मौसम का मिजाज और दुनिया की मुसीबत

भारत में जून से सितंबर के मौसम के दौरान उगने वाली फसलें जैसे चावल, मक्का, तिलहन, दालें इत्यादि भारी रूप से मौनसून पर निर्भर करती हैं। आर्थिक हलकों में यह माना जा रहा है कि मौसम के मिजाज बिगड़ने से संभव है कि खाने–पीने की चीजें पहले से और ज्यादा महंगी हो सकती हैं और आम आदमी की मुश्किलें और बढ़ सकती हैं. . .दुनिया भर में खाद्यान्नों की कीमतें आसमान छूने लगती हैं। इसलिए खाद्यान्न उत्पादन में थोड़ी भी कमी देश में मुद्रास्फीति की आग में घी देने जैसा काम करेगी। सरकार को चाहिए कि इस मौसम में गेहूं की अधिक से अधिक खरीद करके अपने भंडारों में भरे।

■ डॉ. अश्विनी महाजन

मई 16, 2014 को चुनाव नतीजे आने के बाद देश में नई सरकार के गठन की उल्टी गिनती शुरू हो चुकी है, लेकिन उसके साथ ही देश की खेती पर आने वाली मुसीबत की आहट भी साथ ही सुनाई देने लगी है। मौसम वैज्ञानिकों का एक बड़ा वर्ग यह मान रहा है कि इस बार भारत को अल्प वृष्टि की समस्या का सामना करना पड़ेगा, जिसके चलते जून से सितम्बर की (खरीफ) फसलें जैसे चावल, ज्वार, मक्का, अरहर, उड़द इत्यादि दालें एवं कई प्रकार के तिलहन भयंकर रूप से प्रभावित होंगे। हालांकि मानसून की बारे में अधिक पुख्ता अनुमान तो जून–जुलाई माल में मौसम विभाग द्वारा जारी सूचनाओं के आधार पर ही लगाया जा सकेगा, लेकिन दुनिया भर की मौसम संबंधी सूचनाओं पर भी नजर रखना जरूरी है।

यूं तो भविष्य के गर्भ में क्या लिखा है, कोई नहीं जानता, लेकिन मौसम के पूर्वानुमानों के आधार के रूप में 'एल–नीनो' प्रभाव को दुनिया में मॉनसून के साथ जोड़कर देखा जाता है। अमरीकी मौसम विशेषज्ञ इस वर्ष भारी वर्षा होने की संभावनायें व्यक्त कर रहे हैं। भारत की एक निजी क्षेत्र के मौसम पूर्वानुमान कंपनी स्काईमैट ने पुर्वानुमान में कहा है कि 40 प्रतिशत संभावना है कि इस साल मानसून सामान्य से कम रहेगा। कंपनी ने कहा है कि वे एल नीनो की संभावनाओं पर नजर रखे हुये हैं। यह हो सकता है कि 2014 का वर्ष एल नीनों वर्ष रहे। कंपनी की माने तो, जैसे–जैसे समय आगे बढ़ रहा है, एल–नीनो की संभावनायें और पुख्ता होती जा रही है। अमरीका की नेशनल ओशियानिक और एटमॉस्फरिक एडमिनिस्ट्रेशन ने एल नीनो की 50 प्रतिशत और ऑस्ट्रेलियन मेट्रोलोजिकल ब्यूरो ने 70 प्रतिशत एल नीनो की संभावनायें व्यक्त की हैं।

क्या है एल–नीनो?

'एल–नीनो' वातावरण की एक ऐसी स्थिति है, जिसमें प्रशांत महासागर में सामान्य से ज्यादा गर्मी हो सकती है। आशंका यह है कि आगामी सर्दियों में अमरीका में दुगनी वर्षा हो सकती है और ठंड भी बढ़ सकती है। 9 अप्रैल 2014 की गणनाओं के अनुसार एल नीनो की संभावनायें पिछले महीने की 52 प्रतिशत से बढ़कर अब 66 प्रतिशत तक पहुंच चुकी हैं। इसका असर मौसम और वर्षा पर कितना पड़ेगा, यह तो कोई भी स्पष्टता से नहीं कह सकता, लेकिन यह जरूर है कि ऐसे में अमरीका के दक्षिणी हिस्सों, टैक्सास से फ्लोरिडा तक और कई अन्य स्थानों पर औसत से ज्यादा बारिश होगी, लेकिन भारत सहित कई एशियाई देशों पर इसका प्रभाव उल्टा होगा।

भारत पर एल–नीनो का असर

एल–नीनो की यह परिस्थिति भारत में जून से सितंबर के बीच अल्प वृष्टि से जुड़ी है। ऐसा माना जाता है कि 3 से 7 सालों के अंतराल के दौरान कोई एक ऐसा साल आता है, जब प्रशांत महासागर के मध्य में सामान्य से ज्यादा गर्मी हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में सामान्यतौर पर भारत के दक्षिण–पूर्व में मानसून में कमी आ जाती है। हो सकता है कि भारी सूखा पड़े या सामान्य से कम वर्षा हो, लेकिन दोनों सूरतों में खेती पर असर होना अवश्यंभावी है।

गौरतलब है कि भारत में जून से सितंबर के मौसम के दौरान उगने वाली फसलें जैसे चावल, मक्का, तिलहन, दालें इत्यादि भारी रूप से मौनसून पर निर्भर करती हैं। आर्थिक हलकों में यह माना जा रहा है कि मौसम के मिजाज बिगड़ने से संभव है कि खाने–पीने की चीजें पहले से और ज्यादा महंगी हो सकती हैं और आम आदमी की मुश्किलें और बढ़ सकती हैं।

भारत में मानसून और कृषि उत्पादन का गहरा रिश्ता रहा है। यदि पिछले आठ साल की बात करें तो देखते हैं 2005–06 से अभी तक खाद्यान्न उत्पादन 2086 लाख टन से बढ़ता हुआ, 2013–14 में 2630 लाख टन (संभावित) तक पहुंच चुका है। 2008 में पुनः एल–नीनो के प्रभाव में मानसून के फेल हो जाने से खाद्यान्नों की कमी से निपटने के लिये देश को 50 लाख टन गेहूं का आयात करना पड़ा था और देश खाद्यान्नों के निवल निर्यातक से निवल आयातक में तबदील हो गया। वर्ष 2011–12 और 2012–13 में अच्छी मानसून के चलते खाद्यान्न उत्पादन क्रमशः 2593 लाख टन और 2554 लाख टन रहा।

गौरतलब है कि 2010–11 में जीडीपी में 9 प्रतिशत से ज्यादा ग्रोथ हुई, लेकिन 2011–12 में वह घटकर 6.2 प्रतिशत और 2012–13 में और भी घटकर मात्र 4.5 प्रतिशत ही रह गई। हालांकि हाल ही में अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने भारत के लिये 5 प्रतिशत से अधिक ग्रोथ की संभावनायें व्यक्त की हैं, लेकिन यकीनन आईएमएफ ने एल–नीनो के संभावित प्रभाव का आकलन नहीं किया है। यदि मौसम वैज्ञानिकों की बात माने तो वर्षा कम होने से कृषि उत्पादन भारी रूप से प्रभावित हो सकता है। गौरतलब है कि पिछले कुछ सालों से देश में खाद्यान्न एवं अन्य कृषि उत्पादन में खासी वृद्धि दर्ज हुई थी। इसके परिणामस्वरूप वर्ष 2013–14 के दौरान खाद्यान्न उत्पादन 2630 लाख टन तक पहुंचने की संभावना है। इन संभावनाओं के चलते ऐसा समझा जा रहा है कि खाने–पीने की चीजों में महंगाई कम हो सकती है, लेकिन एल–नीनो के प्रभाव के चलते खरीफ फसलों में होने वाले इस नुकसान का असर महंगाई पर तो पड़ ही सकता है। महंगाई का सीधा–सीधा असर ब्याज दरों पर पड़ता है।

पिछले कई सालो से देश ऊंची ब्याज दरों की त्रासदी से गुजर रहा है। हर तिमाही में रिजर्व बैंक से यह आशा की जाती है कि वह ब्याज दरों को घटा कर अर्थव्यवस्था को राहत देगा, लेकिन हर बार महंगाई की लगातार ऊंची बनी हुई दर रिजर्व बैंक को ऐसा करने से रोक देती है। खेती में इस संभावित गिरावट के चलते होने वाली महंगाई से इस कारण जीडीपी में ग्रोथ भी बुरी तरह से प्रभावित हो सकती है।

जरूरी है पूर्व तैयारी

आज भारत सरकार अपने खाद्य सुरक्षा कानून को लागू करने के लिए एक बड़े बफर स्टॉक रखने की चुनौती से जूझ रही है। गौरतलब है कि 65 प्रतिशत जनसंख्या के लिए प्रति व्यक्ति 5 किलो अनाज प्रतिमाह अत्यंत कम कीमत पर उपलब्ध कराने की सरकारी जिम्मेदारी है, जिसकी कोताही नहीं हो सकती। लेकिन अगर खरीफ फसलों के उत्पादन में मानसून की कमी के कारण गिरावट आती है, तो इतना अनाज मुहैया कराना सरकार के बूते से बाहर हो जाएगा। हमें ध्यान रखना होगा कि दुनिया में भारत को खिलाने की सामर्थ्य नहीं है।

दुनिया में बड़े–बड़े खाद्यान्न उत्पादक देश अब खाद्यान्नों की बजाय ईंधन उगाने में ज्यादा रूचि ले रहे हैं। वे अपने खाद्यान्नों के भंडारों को भी एथनॉल में बदल रहे हैं ताकि वे अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा कर सके। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन ने कई बार इस विषय में चिंता भी व्यक्त की है।

यह देखने में आया है कि जब भारत में खाद्यान्नों की कमी होती है और खाद्यान्न आयात करने पड़ते हैं तो दुनिया भर में खाद्यान्नों की कीमतें आसमान छूने लगती हैं। इसलिए खाद्यान्न उत्पादन में थोड़ी भी कमी देश में मुद्रास्फीति की आग में घी देने जैसा काम करेगी। सरकार को चाहिए कि इस मौसम में गेहूं की अधिक से अधिक खरीद करके अपने भंडारों में भरे। सरकार खरीफ फसलों के लिए खास ध्यान रखें और जरूरी हो तो किफायती सिंचाई जैसे ड्रिप फार्मिंग जैसी तकनीकों को प्रोत्साहन दे। किसी भी समस्या के आने पर बैंकों और वित्तीय संस्थानों को भी अपनी तैयारी रखनी चाहिए। ❑

क्या फिर होगी सूखे की मार किसानों पर. . .

सरकार आंख मूंदकर देश भर में आयातित मॉडल लागू करती रहती है, जिसमें पैसा तो बेइंतहा खर्च होता है, लेकिन नतीजा सिफर रहता है। जल संचयन में जितना पैसा खर्च किया गया है, उसके हिसाब से तो देश से सूखे का नामो–निशान मिट जाना चाहिए था। मैंने पिछले साल अमेरिका के टेक्सास प्रांत में तमिलनाडु की जल संचयन प्रणाली का उपयोग होते देखा। वहीं केलिफोर्निया में ओडिशा की प्रणाली का उपयोग किया जाता है। उनका अपना मॉडल उनके यहां फेल हो गया तभी तो वे हमारे मॉडल अपना रहे हैं। लेकिन हमारे यहां अपने पारंपरिक तरीकों के प्रति बेरुखी का भाव है। हमें देशी तरीकों के इस्तेमाल पर शर्म आती है। हमें नई तकनीकों से आंखें नहीं मूंदनी है, बल्कि असरदार तकनीकों को ही उन्नत बनाना है।

■ **देविन्दर शर्मा**

भारतीय मौसम विभाग के मुताबिक इस साल मानसूनी बारिश में लगभग पांच फीसद की कमी हो सकती है, वहीं कुछ निजी कंपनियों द्वारा लगाए गए अनुमान के मुताबिक बारिश में इससे कहीं ज्यादा कमी आने की आशंका है। इससे एक बात तो साफ है कि मानसून सामान्य से कम होगा और यह साल खेती–किसानी के अच्छा नहीं रहने वाला है। सरकार के साथ–साथ किसानों को भी अभी से तैयारी कर लेनी चाहिए ताकि नुकसान कम से कम हो।

आम चुनाव के बाद बनने वाली नई सरकार के लिए 'सिर मुंडाते ही ओले पड़े' वाले हालात बनने वाले हैं, क्योंकि अलनीनो प्रभाव मानसून पर असर डाल सकता है। हालांकि यह हमेशा जरूरी नहीं होता कि जब भी अलनीनो आता है तब नुकसान ही होता है, कई बार इसका प्रभाव बिल्कुल नगण्य होता है। 2012 में अलनीनो आया था तो कई इलाकों में बारिश देर से आई थी, लेकिन जब आई तो पूरी तरह आई। अगर इस बार बारिश सामान्य से कम होती है तो उसके लिए हमें अभी से तैयारी करनी चाहिए। मानसून के दौरान देश के अधिकतर हिस्सों में खरीफ की फसल उपजाई जाती है, जिसमें धान और कपास सबसे प्रमुख फसल हैं। सरकार को देखना चाहिए कि

धान की पैदावार वाले इलाकों में किस प्रकार पानी की उपलब्धता कराई जा सकती है। इसके लिए भरपूर बिजली की आवश्यकता होगी, ताकि भूमिगत जल का उपयोग किया जा सके।

धान की खेती की एक नई तकनीक पिछले कई सालों से देश में उपलब्ध है जिसे सरकार भी काफी बढ़ावा दे रही है। इस तकनीक का नाम है–श्री तकनीक। इसके माध्यम से बेहद कम पानी से धान की खेती की जा सकती है। इस तकनीक में पानी की जरूरत 40 फीसद तक कम होती है, साथ ही बीज की खपत भी कम होती है। अभी यह तकनीक देश के किसानों तक व्यापक रूप से नहीं पहुंच पाई है। अगर इसे हम अधिकतम किसानों तक पहुंचा दें तो पानी की कमी के बावजूद अच्छी तरह धान की खेती की जा सकती

आम चुनाव के बाद बनने वाली नई सरकार के लिए 'सिर मुंडाते ही ओले पड़े' वाले हालात बनने वाले हैं, क्योंकि अलनीनो प्रभाव मानसून पर असर डाल सकता है। हालांकि यह हमेशा जरूरी नहीं होता कि जब भी अलनीनो आता है तब नुकसान ही होता है, कई बार इसका प्रभाव बिल्कुल नगण्य होता है।

है।

सूखे की आशंका के मद्देनजर नई सरकार को इस पण्राली को आक्रामक तरीके से बढ़ावा देना चाहिए। देश के 60 फीसद इलाके में खेती पूरी तरह बारिश पर निर्भर होती है। सूखे की चपेट में देश के यही इलाके आते हैं। इन क्षेत्रों के किसानों को सलाह दी जानी चाहिए कि वे धान को छोड़कर दालों की खेती करें। इसके अलावा वे ज्वार–बाजरा व रागी जैसे मोटे अनाजों का उत्पादन करें। इसका कारण एक तो यह है कि दाल व अन्य मोटे अनाजों (मिलेट्स) में धान के बनिस्पत बहुत कम पानी की जरूरत होती है। इसके अलावा देश में दालों की इतनी कमी है कि हमें इन्हें भारी मात्रा में आयात करना पड़ता है।

हमारा देश दुनिया में दाल का सबसे बड़ा आयातक देश है, जबकि सरकारी गोदाम चावल और गेहूं से भरे पड़े हैं। लेकिन क्योंकि सरकार इन्हीं अनाजों की सरकारी खरीद करती है, इसलिए किसान उन्हें उपजाने पर ज्यादा जोर देते हैं। सरकार दालों का न्यूनतम समर्थन मूल्य तो घोषित करती है, लेकिन उसकी सरकारी खरीद नहीं की जाती है। यही कारण है कि जो किसान दाल उपजाता है उसे औने–पौने दाम पर बिचौलियों के हवाले या खुले बाजार में बेचना पड़ता है।

अगर सरकार इस साल दालों की सरकारी खरीद की घोषणा करती है तो मेरा मानना है कि बहुत से किसान दालों के उत्पादन पर ध्यान देंगे। इससे सरकार के आयात खर्च में भी कटौती होगी और अर्थव्यवस्था भी सुधरेगी। इसके लिए सरकार को पर्याप्त मात्रा में दालों के बीज उपलब्ध कराने पड़ेंगे। जरूरत पड़े तो हमें बीज का आयात भी करना चाहिए। इसके

अलावा किसानों के लिए बिजली की उपलब्धता सुनिश्चित करना बहुत जरूरी है। सूखे की आशंका को देखते हुए सरकार को अभी से इसकी तैयारी में जुट जाना चाहिए। जिन राज्यों में भरपूर बिजली सप्लाई होती है वहां सूखे का असर काफी कम होता है।

सन् 2009 में जब देश में सूखा पड़ा था, पंजाब–हरियाणा में कृषि उत्पादन में कोई फर्क नहीं पड़ा था, क्योंकि वहां 99 फीसद किसानों के पास सिंचाई के साधन हैं। अगर हम सूखे की स्थिति से पूरी तरह छुटकारा चाहते हैं तो हमें पूरी कृषि प्रणाली को बदलने की जरूरत है। भारत

सरकार को यह देखना होगा देश के जिन इलाकों में पानी की कमी हो, वहां उसी हिसाब से फसलों का चुनाव किया जाए। लेकिन ऐसी कोई नीति नहीं होने का नतीजा यह है कि अगर किसी साल बारिश में थोड़ी भी कमी हो तो सूखे की स्थिति पैदा हो जाती है. . .हमारे यहां जल संचयन की समृद्ध परंपरा रही है जो हर इलाके के हिसाब से अलग होती थी।

के 60 प्रतिशत मैदानी इलाकों में दो तरीकों की फसलों का उत्पादन होता है। आजकल ज्यादातर किसान वहां हाइब्रिड बीज का प्रयोग करते हैं जिसमें पानी की जरूरत दोगुने से भी अधिक होती है। चाहे वो धान हो, कपास हो, मक्का हो या दूसरी फसलेंय आजकल सभी में हाइब्रिड बीज का अंधाधुंध प्रयोग किया जा रहा है। मुझे यह देखकर आश्र्चय होता है कि पंजाब के किसान तो उन्नत बीज का प्रयोग करते हैं जहां पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, लेकिन आंध्र प्रदेश के किसान भी हाइब्रिड बीजों का प्रयोग करते हैं जबकि वहां खेती मुख्यतः बारिश पर निर्भर है। वहां तो ऐसी फसल लगानी चाहिए जिसमें पानी का कम से कम उपयोग हो, लेकिन हो इसका उल्टा रहा है। इसलिए हमें पूरे देश में बड़े पैमाने पर बदलाव की जरूरत है।

सरकार को यह देखना होगा देश के जिन इलाकों में पानी की कमी हो, वहां उसी हिसाब से फसलों का चुनाव किया जाए। लेकिन ऐसी कोई नीति नहीं होने का नतीजा यह है कि अगर किसी साल बारिश में थोड़ी भी कमी हो तो सूखे की स्थिति पैदा हो जाती है। उदाहरण के लिए देश में मेंथा की फसल उगाई जाती है।

एक किलो मेंथा तेल बनाने के लिए 1.25 लाख लीटर पानी की जरूरत होती है। यह फसल बुंदेलखंड जैसे इलाकों में उपजाई जाती है, जहां भयंकर सूखा पड़ता है। कुछ किसान भले ही अपने फायदे के लिए जमीन से पानी खींचकर उसे उपजाते हों, लेकिन जलस्तर कम होने का नुकसान तो बाकी किसानों को भी उठाना पड़ता है। इसलिए एक नीति की जरूरत है कि किसान फसलों का चयन और उत्पादन सोच–समझ कर करें।

राजस्थान में जहां पानी की बेहद कमी है, वहां के किसान गन्ने की खेती क्यों करते हैं! गन्ने को गेहूं और धान के मुकाबले पांच गुणा ज्यादा पानी की जरूरत होती है। अपने देश में सरकार जल संचयन का जो अमेरिकी मॉडल लायी है वह वहां भी फेल हो चुका है। जबकि हमारे यहां जल संचयन की समृद्ध परंपरा रही है जो हर इलाके के हिसाब से अलग होती थी। जो तरीका राजस्थान के लिए सही है, वह उड़ीसा या तमिलनाडु के लिए उतना लाभकारी नहीं हो सकता है। परंपरागत रूप से हमारे यहां हर इलाके में बेहद असरदार तरीके से जल संचयन किया जाता था, जिसे खत्म कर दिया गया है।

सरकार आंख मूंदकर देश भर में आयातित मॉडल लागू करती रहती है, जिसमें पैसा तो बेइंतहा खर्च होता है, लेकिन नतीजा सिफर रहता है। जल संचयन में जितना पैसा खर्च किया गया है, उसके हिसाब से तो देश से सूखे का नामोनिशान मिट जाना चाहिए था। मैंने पिछले साल अमेरिका के टेक्सास प्रांत में तमिलनाडु की जल संचयन प्रणाली का उपयोग होते देखा। वहीं केलिफोर्निया में ओडिशा की प्रणाली का उपयोग किया जाता है। उनका अपना मॉडल उनके यहां फेल हो गया तभी तो वे हमारे मॉडल अपना रहे हैं। लेकिन हमारे यहां अपने पारंपरिक तरीकों के प्रति बेरुखी का भाव है। हमें देशी तरीकों के इस्तेमाल पर शर्म आती है। हमें नई तकनीकों से आंखें नहीं मूंदनी है, बल्कि असरदार तकनीकों को ही उन्नत बनाना है। ❑

:: सदस्यता संबंधी सूचना ::

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है :–

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	150 रुपए	1500/– रुपए
अंग्रेजी	150 रुपए	1500/– रुपए

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740 IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram) में जमा करवा सकते हैं और उसकी रसीद और अपना पता आप कार्यालय में अवश्य भेजे।

स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22

खतरनाक है जीएम फसल के परीक्षण की मंजूरी

यह ध्यान में रखना बहुत जरूरी है कि जीएम फसलों का थोड़ा बहुत प्रसार व परीक्षण भी बहुत घातक हो सकता है। सवाल यह नहीं है कि उन फसलों को थोड़ा–बहुत उगाने से उत्पादकता बढ़ने के नतीजे मिलेंगे या नहीं। मूल मुद्दा यह है कि इनसे जो सामान्य फसलें हैं वे भी प्रदूषित हो सकती हैं। यदि एक बार जेनेटिक प्रदूषण फैल गया तो दुनिया भर में अच्छी गुणवत्ता व सुरक्षित खाद्यों का जो बाजार है, जिसमें फसलों की बेहतर कीमत मिलती है, वह हमसे छिन जाएगा। आने वाले समय के लक्षण अभी से दिख रहे हैं कि स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोग दुनिया भर में रासायनिक व जेनेटिक प्रदूषण से मुक्त खाद्यों के लिए बेहतर कीमत देने को तैयार है। यदि जेनेटिक प्रदूषण को न रोका गया तो किसानों का यह बाजार उनसे छिन जाएगा।

■ भारत डोगरा

लगता है कि भारत में जीएम (जीन संवर्धित) फसलों को फैलाने पर तुली बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दखल भारत सरकार में बहुत ऊपर तक है। तभी तो विश्व भर में जीएम फसलों के खतरों के बारे में उपलब्ध होने वाली तमाम महवपूर्ण जानकारियों के बावजूद एक के बाद एक इन फसलों के पक्ष में निर्णय लिए जा रहे हैं। फरवरी में केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय ने अनेक जीएम फसलों के सीमित फील्ड परीक्षण को हरी झंडी दिखाई थी, तो 21 मार्च को जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी ने 10 जीएम किस्मों का 'वेलीडिटी' समय समाप्त होने के बाद इसे 'रीवेलिडेट' कर दिया है जिससे दूसरे चरण के परीक्षण अधिक बड़े क्षेत्र में हो सकेंगे, हालांकि इसके लिए राज्य सरकारों की अनुमति चाहिए होगी। यहां यह बताना जरूरी है कि जीएम फसलों से जो व्यापक स्तर के स्वास्थ्य, पर्यावरण व खेती किसानी के लिए खतरे बताए गए हैं उनका संदर्भ केवल इन फसलों के व्यापारिक प्रसार से ही नहीं है अपितु फील्ड परीक्षणों से भी जेनेटिक प्रदूषण फैल सकता है। इस विचार को इंडिपेंडेंट साइंस पैनल (स्वतंत्र विज्ञान मंच) ने बहुत सारगर्भित ढंग से व्यक्त किया है। इस पैनल में एकत्र हुए विश्व के अनेक देशों के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों व विशेषज्ञों ने जीएम फसलों पर एक महत्वपूर्ण दस्तावेज तैयार किया जिसके निष्कर्ष में उन्होंने कहा है– अब इस बारे में व्यापक सहमति है कि इन फसलों का प्रसार होने पर ट्रांसजेनिक प्रदूषण से बचा नहीं जा सकता है। अतः जीएम फसलों व गैर जीएम फसलों का सहअस्तित्व नहीं हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि जीएम फसलों की सुरक्षा प्रमाणित नहीं हो सकी है। इसके विपरीत पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं जिनसे इन फसलों को लेकर सुरक्षा संबंधी गंभीर चिंताएं उत्पन्न होती हैं। यदि इनकी उपेक्षा की गई तो स्वास्थ्य व पर्यावरण की क्षति होगी जिसकी भरपाई नहीं हो सकती है। इन फसलों से जुड़े खतरे का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष कई वैज्ञानिकों ने यह बताया है कि

फरवरी में केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय ने अनेक जीएम फसलों के सीमित फील्ड परीक्षण को हरी झंडी दिखाई थी, तो 21 मार्च को जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी ने 10 जीएम किस्मों का 'वेलीडिटी' समय समाप्त होने के बाद इसे 'रीवेलिडेट' कर दिया है जिससे दूसरे चरण के परीक्षण अधिक बड़े क्षेत्र में हो सकेंगे, हालांकि इसके लिए राज्य सरकारों की अनुमति चाहिए होगी।

जो खतरे पर्यावरण में फैलेंगे, उन पर हमारा नियंत्रण नहीं रह जाएगा व बहुत दुष्परिणाम सामने आने पर भी हम इनकी क्षतिपूर्ति नहीं कर पाएंगे। जेनेटिक प्रदूषण का मूल चरित्र ही ऐसा है। वायु प्रदूषण व जल प्रदूषण की गंभीरता पता चलने पर कारणों का पता लगाकर उन्हें नियंत्रित कर सकते हैं, पर जेनेटिक प्रदूषण यदि पर्यावरण में चला गया तो वह हमारे नियंत्रण से बाहर हो जाता है।

जानी–मानी बायोकेमिस्ट व पोषण विशेषज्ञ प्रोफेसर सूसन बारडोक्ज ने कहा है – अब तक की सब तकनीकें ऐसी थीं जो नियंत्रित हो सकती थीं। पर मानव इतिहास में जीएम पहली तकनीक है जिससे खतरा उत्पन्न होने पर क्षति को रोका नहीं जा सकता है। जब एक जीएम ऑर्गनिज्म या जीएमओ को रिलीज कर दिया जाता है तो वह नियंत्रण से बाहर हो जाता है, हमारे पास उसे लौटा लाने का कोई उपाय नहीं है। इसके मनुष्य व अन्य जीवों के स्वास्थ्य पर बहुत गंभीर परिणाम हो सकते हैं। जीएम फसलों के प्रसार से सामान्य फसलों में जेनेटिक प्रदूषण का बहुत प्रतिकूल असर हो सकता है। दुनिया के बहुत से देश ऐसे खाद्य चाहते हैं जो जीएम फसलों के असर से मुक्त हों। यदि हमारे यहां जीएम फसलों का प्रसार होगा तो इन देशों का बाजार हमसे छिन जाएगा। कृषि व खाद्य क्षेत्र में जेनेटिक इंजीनियरिंग की तकनीक मात्र लगभग छह–सात बहुराष्ट्रीय कंपनियों व उनकी सहयोगी या उप–कंपनियों के हाथ में केंद्रित हैं। इन कंपनियों का मूल आधार पश्चिमी देशों व विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका में है। इनका उद्देश्य जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से विश्व कृषि व खाद्य व्यवस्था पर ऐसा नियंतण्रस्थापित करना है जैसा विश्व इतिहास में आज तक संभव नहीं हुआ है। भारतीय सुप्रीम कोर्ट ने जैव तकनीक के ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक प्रो. पुष्प भार्गव को जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी के कार्य पर निगरानी रखने के लिए नियुक्त किया था। अपने एक चर्चित लेख में विश्व ख्यातिप्राप्त इस वैज्ञानिक ने देश को चेतावनी दी है कि चंद शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा अपने व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों को जेनेटिक रूप से बदली गई जीएम फसलों के माध्यम से आगे बढ़ाने के प्रयासों से सावधान रहे। उन्होंने आगे कहा है कि इस प्रयास का अंतिम लक्ष्य भारतीय कृषि व खाद्य उत्पादन पर नियंत्रण प्राप्त करना है।

जानी–मानी बायोकेमिस्ट व पोषण विशेषज्ञ प्रोफेसर सूसन बारडोक्ज ने कहा है – अब तक की सब तकनीकें ऐसी थीं जो नियंत्रित हो सकती थीं। पर मानव इतिहास में जीएम पहली तकनीक है जिससे खतरा उत्पन्न होने पर क्षति को रोका नहीं जा सकता है। जब एक जीएम ऑर्गनिज्म या जीएमओ को रिलीज कर दिया जाता है तो वह नियंत्रण से बाहर हो जाता है, हमारे पास उसे लौटा लाने का कोई उपाय नहीं है। इसके मनुष्य व अन्य जीवों के स्वास्थ्य पर बहुत गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

उन्होंने कहा कि इस षडयंत्र से जुड़ी एक मुख्य कंपनी का कानून तोड़ने व अनैतिक कायरे का चार दशक का रिकॉर्ड है। प्रो. भार्गव ने मुताबिक भारतीय रेगुलेटर एजेंसियों ने इस कंपनी के रिकॉर्ड पर न तो सवाल उठाए हैं न ही अनेक प्रतिष्ठित, निष्ठावान वैज्ञानिकों के अनुसंधान को ध्यान में रखा है। इन वैज्ञानिकों की प्रतिष्ठित अनुसंधान पत्रिकाओं में प्रकाशित रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि जीएम फसलों के मामलों में अत्यधिक बरतीन सावधानी चाहिए क्योंकि एक बार वे वातावरण में रिलीज हो गई तो फिर वे कितनी भी क्षति करें, उन्हें पूरी तरह लौटाना संभव नहीं है।

यह ध्यान में रखना बहुत जरूरी है कि जीएम फसलों का थोड़ा बहुत प्रसार व परीक्षण भी बहुत घातक हो सकता है।

सवाल यह नहीं है कि उन फसलों को थोड़ा–बहुत उगाने से उत्पादकता बढ़ने के नतीजे मिलेंगे या नहीं। मूल मुद्दा यह है कि इनसे जो सामान्य फसलें हैं वे भी प्रदूषित हो सकती हैं। यदि एक बार जेनेटिक प्रदूषण फैल गया तो दुनिया भर में अच्छी गुणवत्ता व सुरक्षित खाद्यों का जो बाजार है, जिसमें फसलों की बेहतर कीमत मिलती है, वह हमसे छिन जाएगा। आने वाले समय के लक्षण अभी से दिख रहे हैं कि स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोग दुनिया भर में रासायनिक व जेनेटिक प्रदूषण से मुक्त खाद्यों के लिए बेहतर कीमत देने को तैयार है। यदि जेनेटिक प्रदूषण को न रोका गया तो किसानों का यह बाजार उनसे छिन जाएगा।

विश्व के 17 विख्यात वैज्ञानिकों ने भारत के प्रधानमंत्री को कुछ समय पहले एक पत्र लिखकर कहा कि भारत के सरकारी रेग्यूलेटर स्वतंत्र जैव–सुरक्षा टैस्ट को जरूरी नहीं मानते हैं। जो कंपनी अपने जीएम उत्पाद के व्यापारिक प्रसार की स्वीकृति प्राप्त करना चाहती है, उसके द्वारा किए गए अनुसंधान को ही बिना आलोचना के सुरक्षा का प्रमाण मान लिया जाता है। भारत के 24 प्रतिष्ठित नागरिकों ने कुछ समय पहले प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा कि सरकारी रेग्यूलेटर ठीक से काम नहीं कर रहे हैं व नीतिनिर्धा रकों को गुमराह कर रहे हैं। पत्र के अनुसार इन रेग्यूलेटरों को मानसैंटों जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियां प्रभावित कर रही हैं जिन्हें गंभीर अपराधों का दोषी पाया जा चुका है। ऐसे में सरकारी स्तर पर गंभीर खतरों की उपेक्षा क्यों हो रही है? इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि विश्व की सबसे बड़ी जीएम कंपनी द्वारा बड़े पैमाने पर अपना कार्य करवाने के लिए रिश्वत देने की बात सामने आ चुकी है व इसके लिए वह दंडित भी हो चुकी है। इसके बावजूद जब तमाम प्रमाणों व अध्ययनों की अवहेलना करते हुए उसके उत्पादों के खतरों को अधिकारी व मंत्रती नजरअंदाज करते हैं तो क्या सरकार को सतर्क होकर इसकी जांच नहीं करवानी चाहिए? ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

स्वदेशी केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं, इसमें स्वदेशी का भाव भी पर्याप्त मात्रा में है। वास्तव में राष्ट्र की अस्मिता का उद्‌गार है – स्वदेशी। स्वदेश का अभियान और राष्ट्र प्रेम का साक्षात्कार स्वदेशी वस्तुओं के रूप में सामने आता है। स्वदेशी वस्तुओं में राष्ट्र–भावना के दर्शन होते हैं।

– महात्मा गाँधी जी

कपड़ा उद्योग में कैसे आएगी जान!

टेक्सटाइल उद्योग को ऐसी नीति की दरकार है जहां आकर्षक ब्याज दरों के साथ आयात शुल्क में छूट और विभिन्न रियायतों का समावेश हो। तभी निर्यात क्षेत्र प्रतिस्पर्धा में सक्षम होगा और निर्यात बढ़ेगा। तभी 'मेड इन इंडिया' ब्रांड को टेक्सटाइल के अंतरराष्ट्रीय बाजार में अधिक लोकप्रियता मिलेगी। बड़ी संख्या में रोजगार के अवसरों का सृजन होगा तथा टेक्सटाइल उद्योग अधिक विदेशी मुद्रा कमाकर चालू खाता घाटे से जूझ रही अर्थव्यवस्था को मुस्कराहट देता दिखाई देगा।

■ **जयंतीलाल भंडारी**

इन दिनों देश–दुनिया के अर्थ विशेषज्ञ कहते दिख रहे हैं कि 16 मई को 16वीं लोकसभा चुनाव के परिणाम के बाद केन्द्र में बनने वाली नई सरकार द्वारा रोजगारऔर निर्यात बढ़ाने हेतु टेक्सटाइल उद्योग को प्राथमिकता देना जरूरी होगा। पिछले वित्त वर्ष 2013–14 में टेक्सटाइल उद्योग में न निर्धारित रोजगार लक्ष्य प्राप्त हो सका है और न निर्यात का लक्ष्य हासिल हो पाया है।

पिछले वित्त वर्ष में टेक्सटाइल उद्योग का निर्यात लक्ष्य 43 अरब डॉलर था जिसकी प्राप्ति करीब 20 फीसद कम रही है। यही नहीं, पिछले वित्त वर्ष में गारमेंट निर्यात का जो लक्ष्य 18 अरब डॉलर का था, वह 15 अरब डॉलर तक ही सिमट गया। देश में कृषि के बाद सबसे अधिक करीब साढ़े चार करोड़ लोगों को रोजगार देने वाला टेक्सटाइल उद्योग देश का महत्वपूर्ण उद्योग है। इस सेक्टर में कॉटन से लेकर यार्न, फेब्रिक व रेडीमेड गारमेंट शामिल हैं। इस समय दुनिया में चीन के बाद भारत टेक्सटाइल उत्पादन में दूसरे क्रम पर है। भारत के टेक्सटाइल उद्योग का देश के औद्योगिक उत्पादन में करीब 14 प्रतिशत, कुल निर्यात में 12 प्रतिशत और सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में चार प्रतिशत का योगदान है। यही देश का एकमात्र उद्योग है जो कच्चे माल से लेकर पूर्ण उत्पाद तक पूरी तरह आत्म निर्भर है। खासतौर से जनवरी 2005 में जब टेक्सटाइल उद्योग नियंत्रण टेक्सटाइल बाजार में कोटा व्यवस्था से मुक्त हुआ, तब से भारतीय टेक्सटाइल उद्योग चीन ही नहीं, श्रीलंका, बांग्लादेश तथा पाकिस्तान जैसे देशों के साथ गलाकाट प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहा है। यदि नई सरकार भारत से टेक्सटाइल निर्यात को पर्याप्त प्रोत्साहन दे तो निर्यात बढ़ेंगे। भारत के कुल कपड़ा निर्यात में करीब 65 प्रतिशत योगदान वाले अमेरिका और यूरोप के बाजारों में जहां फिर से भारतीय निर्यात बढ़े हैं, वहीं कुछ हद तक लैटिन अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, इस्राइल और जापान जैसे उभरते बाजारों में भी टेक्सटाइल निर्यात बढ़े हैं। डॉलर के मुकाबले चीनी युआन की मजबूती और चीन में श्रम शक्ति महंगी होने से भी चीन की तुलना में भारतीय निर्यातक नियंत्रण बाजार में खुद को ज्यादा

मनरेगा के तहत टेक्सटाइल श्रमिकों को प्रशिक्षित करने की सिफारिश को मूर्त रूप दिया जाए। साथ–साथ टेक्सटाइल उद्योग संबंधी श्रम कानूनों को लचीला बनाया जाए। ऐसे उद्यमियों का भरपूर स्वागत होना चाहिए जो टेक्सटाइल के खुले विश्व बाजार में कदम बढ़ाने को तैयार हों। उन्हें नई टेक्नोलॉजी तथा मशीनरी के लिए हरसंभव सहयोग मिले। टेक्सटाइल उद्योग के लिए केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा और अधिक आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए।

प्रतिस्पर्धी स्थिति में पा रहे हैं।

भारत द्वारा श्रमिकों के न्यूनतम वेतन में बढ़ोतरी, बाल श्रमिकों की संख्या में गिरावट और श्रमिकों के स्वास्थ्य व अन्य सुरक्षा मामले में अंतरराष्ट्रीय मानक अपनाने से बड़े ब्रांड के गारमेंट अब भारतीय गारमेंट निर्माताओं को प्राथमिकता दे रहे हैं। इसके बावजूद अब भी विश्व टेक्सटाइल बाजार में भारत को चीन के समकक्ष लक्ष्य हेतु कई चुनौतियों का सामना करना होगा। वस्तुतः टेक्सटाइल उद्योग को पूंजी की कमी, महंगा कच्चा माल तथा श्रम मुद्दों के अलावा घरेलू व नियंत्रण बाजार में कमजोर मांग समेत विभिन्न चुनौतियां झेलनी पड़ सकती हैं।

टेक्सटाइल उद्योग के लिए अन्य प्रमुख चुनौती उत्पादन की बढ़ती लागत को लेकर है। ईधन कीमतों में तेजी से लागत पर दबाव बढ़ा है। बिजली कटौती से भी इकाइयां प्रभावित हो रही हैं। टेक्सटाइल की अंतरराष्ट्रीय मांग पूरा करने के लिए उच्च गुणवत्ता के मापदंडों पर भारत अब भी पीछे है। उत्पादकता वृद्धि के लिए इस क्षेत्र में प्रशिक्षित और योग्य लोगों की कमी बनी हुई है। अपेक्षित लक्ष्य की जहां तक बात है, वर्तमान में देश में कपड़े की खपत प्रति व्यक्ति 46 मीटर है। इसमें 25 फीसद बढ़ोतरी का लक्ष्य तय हो। पावरलूम सब्सिडी में बढ़ोतरी हो। गारमेंट एक्सपोर्ट में 30 फीसद तक बढ़ोतरी के साथ गारमेंट निर्यात बढ़ाने के लिए नए रणनीतिक कदम उठाए जाएं। जो फैब्रिक देश में उपलब्ध नहीं हैं, उन पर आयात शुल्क कम हो। एक्सपोर्ट क्रेडिट की अवधि 90 दिन से बढ़ा 365 की जाए। कस्टम क्लीयरेंस में तेजी लाई जाए। टेक्सटाइल उद्योग को प्राथमिक क्षेत्र के अंतर्गत लाते हुए टेक्सटाइल इकाइयों को आसान कर्ज दिया जाए।

सरकार नई टेक्सटाइल नीति में ऐसे प्रोत्साहन पैकेज प्रस्तुत करे, जिसमें ब्याज दरों में अतिरिक्त छूट और कच्चे माल के आयात पर शुल्क रियायत के अलावा कार्यशील पूंजी पर देय ब्याज में अतिरिक्त छूट मिले। भूमि अधिग्रहण, पर्यावरण मंजूरी व बिजली समस्या की वजह से जिन टेक्सटाइल पाकरे का काम सालों से अधर में है, उनके क्रियान्वयन के लिए शीघ्रता से कदम बढ़ाए जाएं। प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी दूर करने के लिए अपेरेल ट्रेनिंग एंड डिजाइन सेंटर (एटीडीसी) द्वारा चलाए जा रहे पाठ्यक्रम बढ़ाये जाएं। मनरेगा के तहत टेक्सटाइल श्रमिकों को प्रशिक्षित करने की सिफारिश को मूर्त रूप दिया जाए। साथ–साथ टेक्सटाइल उद्योग संबंधी श्रम कानूनों को लचीला बनाया जाए। ऐसे उद्यमियों का भरपूर स्वागत होना चाहिए जो टेक्सटाइल के खुले विश्व बाजार में कदम बढ़ाने को तैयार हों। उन्हें नई टेक्नोलॉजी तथा मशीनरी के लिए हरसंभव सहयोग मिले। टेक्सटाइल उद्योग के लिए केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा और अधिक आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए।

भारत द्वारा श्रमिकों के न्यूनतम वेतन में बढ़ोतरी, बाल श्रमिकों की संख्या में गिरावट और श्रमिकों के स्वास्थ्य व अन्य सुरक्षा मामले में अंतरराष्ट्रीय मानक अपनाने से बड़े ब्रांड के गारमेंट अब भारतीय गारमेंट निर्माताओं को प्राथमिकता दे रहे हैं। इसके बावजूद अब भी विश्व टेक्सटाइल बाजार में भारत को चीन के समकक्ष लक्ष्य हेतु कई चुनौतियों का सामना करना होगा।

गौरतलब है कि देश में औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार घटने की रिपोर्ट के बीच टेक्सटाइल उद्योग में रोजगार बढ़ने की संभावनाएं राहत देती दिख रही हैं। रेटिंग एजेंसी क्रिसिल ने शोध अध्ययन पर आधारित रिपोर्ट में कहा है कि 2013 से 2019 के दौरान गैर कृषि रोजगार की दर में 25 फीसद से अधिक की कमी आएगी और गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार की जो संख्या 5.2 करोड़ है, वह घटकर 3.8 करोड़ रह जाएगी। रोजगार के बारे में यह रिपोर्ट चौंकाने वाली है।

गैर कृषि क्षेत्र के रोजगार में कमी का अर्थ होगा अप्रैल 2013 से आगे के छह सालों के दौरान 1.4 करोड़ लोग दोबारा कृषि कार्य अपनाएंगे जबकि अप्रैल 2005 के बाद के सात सालों के दौरान 3.7 करोड़ लोगों ने कृषि छोड़ विनिर्माण और अन्य क्षेत्र में कदम बढ़ाए थे। ऐसे में नई सरकार द्वारा 2014 में टेक्सटाइल नीति के तहत टेक्सटाइल उद्योग की तस्वीर संवारने के लिए चमकीली योजना प्रस्तुत हो और उसके अनुरूप आगे बढ़ने के प्रयास किए जाएं तो न केवल टेक्सटाइल उद्योग रोजगार के अवसरों में भारी वृद्धि करता दिखेगा, वरन् टेक्सटाइल निर्यात से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति भी बढ़ेगी। टेक्सटाइल उद्योग को ऐसी नीति की दरकार है जहां आकर्षक ब्याज दरों के साथ आयात शुल्क में छूट और विभिन्न रियायतों का समावेश हो। तभी निर्यात क्षेत्र प्रतिस्पर्धा में सक्षम होगा और निर्यात बढ़ेगा। तभी 'मेड इन इंडिया' ब्रांड को टेक्सटाइल के अंतरराष्ट्रीय बाजार में अधिक लोकप्रियता मिलेगी। बड़ी संख्या में रोजगार के अवसरों का सृजन होगा तथा टेक्सटाइल उद्योग अधिक विदेशी मुद्रा कमाकर चालू खाता घाटे से जूझ रही अर्थव्यवस्था को मुस्कराहट देता दिखाई देगा। ❑

वोट बैंक की सियायत में गढ़ी जा रही है

पंथनिरपेक्षता की नई परिभाषा

राजनेता नहीं चाहते है कि सेक्युलरिज्म की कोई परिभाषा हो जिसका परिणाम यह निकले कि अगर कोई स्वंय को हिन्दू कहता है, हिन्दू हित की कोई बात करता है, हिन्दुओं के उत्थान के लिए कोई संस्थान व संगठन चलाता है, हिन्दुओं की देखभाल के लिए कोई संगठन चल रहा हो जबकि वह संगठन भारत में पैदा प्रत्येक व्यक्ति को हिन्दू ही मानता हो तो यह सब घोर साम्प्रदायिकता की श्रेणी में आ जाता है। भारत में वर्तमान में प्रचलित सेक्युलरिज्म हिन्दू सभ्यता के विरुद्ध चुनौती बन कर रह गया है। विश्व के सबसे बड हिन्दू देश में हिन्दू विरोध ही सेक्युलरिज्म और बौद्धिकता की कसौटी बन गया है। अब समय आ गया है कि सेक्युलरिज्म की परिभाषा कानूनी तौर पर स्थापित की जाए।

■ डॉ. सूर्यप्रकाश अग्रवाल

वर्ष 2014 के मई माह में सम्पन्न हो रहे चुनावों में भ्रष्टाचार, विकास, विचार धारा इत्यादि मुद्दों ने चुनाव प्रचार के दौरान दम तोड़ दिया तथा अंतिम प्रचार धर्मनिरपेक्षता अर्थात पंथनिरपेक्षता पर आकर अटक गया जो सिर्फ वोट बैंक की सियासत का नतीजा रहा। राष्ट्रीय दल भी ध्रुवीकरण के रास्ते पर चल कर ध्रुवीकरण के लिए हर सम्भव कोशिश करते देखे गये। हां जातीय समीकरण कुछ कमजोर अवश्य हुए है जिससे क्षेत्रीय दलों पर अस्तित्व का खतरा मंडराने लगा है।

धर्मनिरपेक्षता का दावा करने वाले स्वयं को अल्पसंख्यकों (मुसलमानों का) बड़ा हितैषी समझते है वे समझाते हैं जबकि इस हित साधना में उनका मकसद मुसलमानों की वोट प्राप्त कर सत्ता की सीढ़ियां ही चढ़ना होता है जिससे अब यह लगने लगा है कि धर्मनिरपेक्ष नेतागिरी ही मुसलमानों की सबसे बड़ी दुश्मन है जो उसे विकास के आत्मविश्वास से दूर करती जा रही है। यह ठीक है कि सभी राजनीतिक दलों के द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तरीके से सांप्रदायिक ध्रुवीकरण का प्रयास हो रहा है जो राजनेता सांप्रदायिक व धर्मनिरपेक्षता (सेक्यूलरिज्म) का मुद्दा उठाते है वे वास्तव में मुस्लिम वोटों को अपने पक्ष में करना चाहते है परन्तु वे यह भूल जाते है कि देश की कुल जनसंख्या में मुसलमानों के 15 प्रतिशत मतों के लिए वे 85 प्रतिशत गैर मुस्लिम मतों को अपने विरोध में खडा पाते है। चूंकि कुल मतों में 85 प्रतिशत एक जुट होकर वोट नहीं डाल पाते है जिससे 15 प्रतिशत मुस्लिम वोटों की एक जुटता प्रत्याशी को जीत दिलाने में सक्षम हो जाती है।

वर्ष 2014 के चुनावों में यह उम्मीद हो चली है कि जो लोग ध्रुवीकरण की राजनीति से लाभ उठाना चाहते है, उन्हें संभवत प्रथम बार अपने इस आचरण के विरुद्ध निर्णायक अभिमत का सामना करना पडेगा।

राजनीति में प्रत्येक राजनेता को अपने वोट बैंक की चिंता करने का अधिकार है लेकिन एक खास समुदाय के वोटों की ही चिंता करना ही धर्मनिरपेक्षता

प्रत्येक पिछड़े व्यक्ति चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान, उनको वे सब सुविधाएं शासन तंत्र के स्तर पर उपलब्ध होनी चाहिए जिस पर की किसी भारतीय नागरिक का हक हो। इसी में देश का कल्याण निहित है और इसी में छिपा है भाजपा का राजनैतिक हित तथा नरेन्द्र मोदी की सफलता का रहस्य।

अर्थात पंथनिरपेक्षता (अब देश में धर्मनिरपेक्षता व पंथनिरेपक्षता का अंतर समाप्त हो चला है) नहीं है। धर्मनिरपेक्षता का ढिंढोरा पीटने वाले राजनेता भले ही स्वयं को मुसलमानों का हमदर्द कहते हो परन्तु अब धर्मनिरपेक्ष नेतागिरी ही मुसलमानों की सबसे बडी दुश्मन बन चुकी है। भाजपा के नरेन्द्र मोदी की भौंड़े व विभत्स्य तरीके से आलोचना कर राजनेता एक दूसरे धर्मनिरपेक्ष राजनेता के वोटों में सैंध ही लगाना चाहते है जैसा की बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार बिहार के ही पूर्व मुख्यमंत्री व रेल मंत्री लालू प्रसाद यादव के वोट बैंक में सैंध मोदी की आलोचना करके कर रहे है। वर्ष 2014 के चुनावों में भाजपा के पीएम पद के प्रत्याशी नरेन्द्र मोदी व मुसलमानों की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध हो रही है। अतः राष्ट्रहित में मुसलमानों को यह प्रयास करना चाहिए कि वे यह प्रयत्न करें कि देश गुजरात के चंहुमुखी विकास के राष्ट्रीय स्तर पर रुपांतरित होने के अवसर से वंचित न रह जाएं। ऐसा करने से अन्य देशवासियों के साथ साथ उनका भी आर्थिक व सामाजिक विकास होगा जो अब तक धर्मनिरपेक्षवादी राजनेता उनसे उनका वोट लेकर नहीं कर पाये।

गत विधानसभा के चुनावों में गुजरात में 20 मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में मुसलामनों ने भाजपा को विजयी बना कर यह दर्शा दिया कि वे 2002 के साम्प्रदायिक दंगों को भूल कर नरेन्द्र मोदी के बहुमुखी विकास वाले नेतृत्व क्षमता में अपनी आस्था रखते है। गुजरात चुनावों में एक भी मुसलमान को भाजपा ने टिकट न देने और अब मोदी मंत्रिमंडल में एक भी मुसलमान को मंत्री के रुप में सम्मलित न करने में मोदी की भले ही कोई राजनीतिक मजबूरी रही हो परन्तु आगमी समय में भाजपा व नरेन्द्र मोदी को मुसलमानों के प्रति समन्वय की नीति मुखरित रूप में अपनानी होगी। यह न केवल राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित होकर वरन् सम्पूर्ण निष्ठा से उन्हें हृदयंगम करना होगा कि भारतीय मुसलमानों को भी वह सब उपलब्ध है जो अन्य भारतीय को और उनसे भी वहीं अपेक्षाएं रखी जानी चाहिए जो अन्य किसी भारतीय नागरिक से।

प्रत्येक पिछड़े व्यक्ति चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान, उनको वे सब सुविधाएं शासन तंत्र के स्तर पर उपलब्ध होनी चाहिए जिस पर की किसी भारतीय नागरिक का हक हो। इसी में देश का कल्याण निहित है और इसी में छिपा है भाजपा का राजनैतिक हित तथा नरेन्द्र मोदी की सफलता का रहस्य।

भाजपा से दूर जाते बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के मोदी विरोध को देखते हुए मुसलमानों को खुश करने के लिए केन्द्र सरकार ने बिहार पैकेज की मोटी सौगात देकर अपना मन्तव्य दर्शा दिया। बिहार को पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोष (बीआरपीएफ) के अंतर्गत वर्तमान 12वीं योजना में शेष बचे चार वर्षों में 12,000 करोड़ रुपये दिये जाएंगे। पिछली योजना में बिहार को 6,468 करोड़ रुपये ही मिले थे। कांग्रेस नीतीश कुमार को सहयोगी समझ कर राजनीति कर रही है तथा लक्ष्य नरेन्द्र मोदी को सांप्रदायिकता में लपेट कर रखना है। मोदी के शासन काल में 2002 में गोधरा रेलवे स्टेशन पर रेल का डिबा जला कर 70 रामसेवकों को भून दिया गया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरुप गुजरात में दंगे भडक उठे। किसी भी दंगे में एक राजनीतिक पार्टी का ही हाथ नहीं होता है। देश में दंगे इससे पूर्व भी हुए और उसके बाद भी अन्य राज्यों में हुए जो सामान्यतया असामाजिक व गुंडातत्व कराते आये है। 1984 में सिखों के खिलाफ दंगे को कांग्रेस को उत्तरदायी ठहराया जाता है तो 2013 के मुजफ्फरनगर दंगों के लिए अदालत ने सपा की सरकार को लापरवाह माना है। अब इसके लिए केवल यह मान लेना कि 1984 के लिए कांग्रेस व 2013 के लिए सपा ही दोषी है ठीक नहीं है। दंगों की हालत उन्पन्न होने पर असामाजिक तत्व सक्रिय होकर लाभ उठाते है और जब तक प्रशासन के द्वारा उन्हें नियंत्रण में लाया जाता है तब तक देर हो चुकी होती है।

वर्ष 1984 से 2013 के बीच देश में विभिन्न राज्यों में हजारों दंगे हुए है परन्तु उन दंगों के लिए किसी भी राजनेता ने नरेन्द्र मोदी की तरह लगातार 12 वर्षों तक राजनीतिक विद्वेष का दंश नहीं झेला है। उन्हें 2002 से अब तक इस राजनीतिक विरोध का सामना करना पडा है जबकि विभिन्न अदालतों ने उन्हें अपराधमुक्त कर दिया है परन्तु उनसे द्वेष रखने वाले बार बार उन्हीं दंगों का जिक्र अपने राजनीतिक लाभ के लिए निरंतर करते आ रहे है और स्वयं के कार्य काल में हुए दंगों को भूल जाते है। अमित शाह के विरुद्ध एफआईआर दर्ज होती है क्योंकि वे प्रदेश की दुर्दशा, बढ़ते अपराध व दंगों के कारण समाज को वोट डाल कर बदला लेने की बात करते है, वे न तो हिन्दू समाज का जिक्र करते है और न ही मुस्लिम समाज का। परन्तु विरोधी राजनेता अप्रत्यक्ष रूप से उनको हिन्दुओं को उकसाने वाला

सिद्ध करने के लिए प्रयासरत है। अब यह अदालत देखेगी कि सत्यता क्या है?

वर्तमान में जिस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक (जिसकी कोई परिभाषा संविधान में नहीं दी गई) साम्प्रदायिकता का खेल धर्मनिरपेक्षता के नाम पर हो रहा है वह दिखाई नहीं दे रहा है। अल्पसंख्यक परस्त राजनेता खुल कर अल्पसंख्यकों को रोजगार देने, कम ब्याज दर पर ऋण देने, आरक्षण देने, कन्याधन देने, शिक्षा देने, आवास देने, विवाह के लिए रकम देने इत्यादि अनेकों योजनाएं चलाए हुए है अथवा चलाने का वायदा कर रहे है क्योंकि पंथनिरपेक्षता अर्थात धर्मनिरपेक्षता की नई परिभाषा में हिन्दुओं का नाम नहीं लेना ही पंथनिरपेक्षता मानी जा रही है और सांप्रदायिकता वह है जिसमें हिन्दुओं के हित के लिए कुछ भी कहा जाए। हिन्दुओं ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति समझ कर अपनी जनसंख्या को बढ़ने से रोका जबकि अल्पसंख्यकों ने अपनी जनसंख्या रोकने के लिए कोई कारगर उपाय नहीं किये जिसके परिणामस्वरुप उनके परिवारों में बच्चों की फौज खड़ी हो गई और उनके पालन पोषण में परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर व दयनीय हो गई जिसके लिए वे स्वंय जिम्मेवार है कोई राष्ट्रीय नीति नहीं। अल्पसंख्यक आर्थिक, सामाजिक व शैक्षिक रुप से पिछड़ गया अब राजनीति के तहत किसी भी राजनेता में इतनी हिम्मत नहीं है कि वह अल्पसंख्यकों को अपना परिवार को सीमित करने की सलाह भर दे सके। परिवार में बढ़ते सदस्यों के कारण इस महंगाई के जमाने में परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होगी ही परन्तु वोट बैंक की सियासत ऐसा मानने की इजाजत कतई नहीं देता है।

भारत में राष्ट्रपति बनने तक के सभी पदों पर अल्पसंख्यकों को समान अधिकार प्राप्त है जबकि विश्व के 53 इस्लामिक देश में से किसी में भी अल्पसंख्यकों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। इसे भारत का दुर्भाग्य ही कहेगें कि जब जब देश में आम चुनाव हुए तो चुनावों में सारे मुद्दे पीछे छूट जाते है और कुछ रह जाता है तो वह बस धर्म व जाति का गुणाभाग। विकास की कोई बात राजनेता नहीं करता जैसे कि भारत को धर्म व जाति की आवश्यकता विकास से कहीं ज्यादा हो। स्वतंत्रता के आंदोलन में अल्पसंख्यकों ने सहयोग दिया तो मोहम्द अली जिन्नाह ने बदले में भारत का विभाजन कराके पाकिस्तान हथिया लिया व स्वतंत्रता के आंदोलन में अपने सहयोग की कीमत ही वसूल कर ली। अब प्रदेश के मंत्री आजम खाँ कहते है कि कारगिल की लडाई में जीत मुसलमान सैनिकों के कारण ही हुई। सेना अभी तक शुद्ध धर्मनिरपेक्ष संगठन बना हुआ है जिसको राजनेता साम्प्रदायिक बनाने की कोशिश कर रहे है।

भारत में राष्ट्रपति बनने तक के सभी पदों पर अल्पसंख्यकों को समान अधिकार प्राप्त है जबकि विश्व के 53 इस्लामिक देश में से किसी में भी अल्पसंख्यकों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। इसे भारत का दुर्भाग्य ही कहेगें कि जब–जब देश में आम चुनाव हुए तो चुनावों में सारे मुद्दे पीछे छूट जाते है और कुछ रह जाता है तो वह बस धर्म व जाति का गुणाभाग। विकास की कोई बात राजनेता नहीं करता जैसे कि भारत को धर्म व जाति की आवश्यकता विकास से कहीं ज्यादा हो।

यदि कोई कहता है कि इंडिया फर्स्ट तो यह गलत बात है और धर्मनिपेक्षतावादियों के गले से नहीं उतरती। राजनीति में जिस धर्मनिपेक्षता (सेक्युलरिज्म) की बात होती है असल में वह झूठी और विकृत पंथनिरपेक्षता से ज्यादा कुछ नहीं है। यह वोट बैंक बनाने का एक जरिया मात्र है। भारत के संविधान की प्रस्तावना में सेक्युलर शब्द गार्हित उद्देश्य से जोडा गया था, इसलिए उसे जानबूझकर अपरिभाषित रखा गया। अतः अभी तक सेक्युलरिज्म की कोई अधिकारिक परिभाषा ही नहीं दी गई है। अभी तक न संविधान में, न ही संसद में कोई कानून बना कर, न ही उच्चतम न्यायलय में अपने किसी निर्णय में सेक्युलरिज्म का कोई अर्थ बताया है। सेक्युलरिज्म की परिभाषा देने के प्रयास को निरन्तर बाधित किया जाता रहा है। राजनेता नहीं चाहते है कि सेक्युलरिज्म की कोई परिभाषा हो जिसका परिणाम यह निकले कि अगर कोई स्वंय को हिन्दू कहता है, हिन्दू हित की कोई बात करता है, हिन्दुओं के उत्थान के लिए कोई संस्थान व संगठन चलाता है, हिन्दुओं की देखभाल के लिए कोई संगठन चल रहा हो जबकि वह संगठन भारत में पैदा प्रत्येक व्यक्ति को हिन्दू ही मानता हो तो यह सब घोर साम्प्रदायिकता की श्रेणी में आ जाता है। भारत में वर्तमान में प्रचलित सेक्युलरिज्म हिन्दू सभ्यता के विरुद्ध चुनौती बन कर रह गया है। विश्व के सबसे बड हिन्दू देश में हिन्दू विरोध ही सेक्युलरिज्म और बौद्धिकता की कसौटी बन गया है। अब समय आ गया है कि सेक्युलरिज्म की परिभाषा कानूनी तौर पर स्थापित की जाए। ❑

देश को है नरेन्द्र मोदी से उम्मीद

अब तक के अपने तमाम भाषणों में नरेन्द्र मोदी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भ्रष्टाचारियों और आतंकवादियों के खिलाफ उनका रवैया सख्त रहेगा। इससे विपक्षी दलों के ही नहीं बल्कि भाजपा के भी कई भ्रष्ट और बेईमान नेता डरे हुए हैं जो समय–समय पर उनके खिलाफ तिकड़में भिड़ाते रहते हैं। हम हिन्दू हो सकते हैं या मुसलमान हो सकते हैं लेकिन यह देश यहां के हर उस नागरिक का है जो सबसे पहले भारतीय है। इसलिए भ्रष्टाचार, आतंकवाद और नक्सलवाद (माओवाद) आज देश की सबसे बड़ी चुनौती है।

■ **निरंकार सिंह**

भाजपा के प्रधानमंत्री पद के घोषित उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी की चुनावी सभाओं में जनता जिस उत्साह और उमंग के साथ शामिल हो रही है उसे देखकर कई तथाकथित सेकुलर दलों की बेचैनी और घबराहट बढ़ गयी है। खासकर राजनीति को धंधा समझने वाले भ्रष्ट नेताओं और भारत को सिर्फ बाजार समझने वाले देश आतंकित और भयभीत हैं। इसलिए वे मोदी को रोकने के लिए एकजुट होने लगे हैं। कोई उनकी जाति पूछ रहा है तो कोई उन्हें दरियादिली का पाठ पढ़ा रहा है। कोई कह रहा है कि मोदी को वोट देने वालों को समुद्र में डूब जाना चाहिए। कांग्रेस के नेता भी जिस तरह से तीसरे मोर्चे का समर्थन लेने या देने की बात कर रहे हैं, उससे अब यह बात साफ हो गयी है कि अब उन्हें अपनी पराजय दिखायी देने लगी है। इसलिए एक तरफ जहां वे मोदी के विकास के दावे को गलत साबित करने में जुटे हुए हैं वहीं दूसरी तरफ तीसरे मोर्चे का हिस्सा बनकर सरकार बनाने की बात कर रहे हैं। जबकि तीसरा मोर्चा बनने से पहले ही बिखर चुका है। उधर अमेरिका, ब्रिटेन और चीन सहित दुनिया के कुछ देश यह नहीं चाहते कि भारत का प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जैसा कोई मजबूत और दूरदर्शी नेता बने जो अपने फैसले खुद करे। ये देश नहीं चाहते हैं कि भारत एक समृद्ध, विकसित और आत्मनिर्भर देश बने। वे चाहते हैं कि भारत उन पर आश्रित रहे ताकि वह सदैव उनके लिए बाजार बना रहे।

इसलिए आज तमाम देशी, विदेशी शक्तियों और आतंकवादियों के निशाने पर नरेन्द्र मोदी पहले नम्बर पर हैं। उनकी भारी लोकप्रियता आज उनके लिए खतरा बन गयी है। आतंकतवादी नहीं चाहते कि भारत में कोई मजबूत और स्थिर सरकार बने जो उनके कारनामों पर लगाम लगा सके। इसलिए पटना की रैली में नरेन्द्र मोदी की हत्या करने का चक्रव्यूह रचा गया था। पर सौभाग्य से वह बच गये। लेकिन यह खतरा टला नहीं है, इसलिए मोदी की सुरक्षा आज देश की पहली जरूरत है। आखिरकार वह देश के सबसे अधिक लोकप्रिय जननेता हैं। देश के करोड़ों लोगों की आशा और आकांक्षाओं के वे प्रतीक बन चुके हैं। देश में नई सरकार बनने तक यह जिम्मेदारी यूपीए सरकार की है। खास कर उन नौकरशाहों

आज देश को एक ऐसे दृढ़ संकल्प वाले दूरदर्शी नेता की जरूरत है जो हमारी सवा सौ करोड़ लोगों की ताकत को कार्यशक्ति (वर्कफोर्स) में बदल सके। देश की विशाल जनशक्ति अभी खर्राटे ले रही है। उन्हें जगाकर देश के नवनिर्माण में लगाया जा सकता है। इसलिए देश की जनता नरेन्द्र मोदी में एक ऐसे नेता का अक्स देख रही है तो इसमें बुराई क्या है?

और प्रशासन तंत्र की है जो भारतीय संविधान के प्रति सच्ची निष्ठा रखते हैं। लोकतंत्र में जनता का असली नायक वही हो सकता है जो आम जनता की आशा और आकांक्षाओं पर खरा उतरने की क्षमता रखता हो और जनता को इसका बोध कराने में भी सक्षम हो। पटना रैली में बम विस्फोट के बाद भी अपने नेता का भाषण सुनने को आतुर जनता और वाराणसी में मोदी के नामांकन के समय उमड़ा जनसैलाब इसी बात की पुष्टि करता है। इस पैमाने पर नरेन्द्र मोदी ने सभी राजनीतिक नेताओं को बहुत पीछे छोड़ दिया है क्योंकि उन्होंने चुनावी रण में उतरने के बाद इस देश के गरीब और आमजन की आकांक्षाओं को इतना झकझोरा है कि गांवों में रहने वाले किसान और मजदूर को भी अपने अस्तित्व का बोध उनके माध्यम से होने लगा है। उनका कहना भी है कि देश के संसाधनों पर पहला हक गरीबों का ही है।

अब तक के अपने तमाम भाषणों में नरेन्द्र मोदी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भ्रष्टाचारियों और आतंकवादियों के खिलाफ उनका रवैया सख्त रहेगा। इससे विपक्षी दलों के ही नहीं बल्कि भाजपा के भी कई भ्रष्ट और बेईमान नेता डरे हुए हैं जो समय–समय पर उनके खिलाफ तिकड़में भिड़ाते रहते हैं। हम हिन्दू हो सकते हैं या मुसलमान हो सकते हैं लेकिन यह देश यहां के हर उस नागरिक का है जो सबसे पहले भारतीय है। इसलिए भ्रष्टाचार, आतंकवाद और नक्सलवाद (माओवाद) आज देश की सबसे बड़ी चुनौती है। इसका मुकाबला हम सभी भारतीय मिलकर ही कर सकते हैं। मोदी ने यह बात भी साफ कर दी है कि अल्पसंख्यकों को किसी प्रकार की कोई आशंका नहीं होनी चाहिए। जिस तरह से उन्होंने पूरे गुजरात के विकास का काम किया है उसी तरह पूरे देश के सवा सौ करोड़ भारतीयों के विकास का उनका लक्ष्य है। देश ने सोनिया–राहुल–मनमोहन के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार के कामकाज को देख लिया है जिसमें उन्हें घपले–घोटाले, महंगाई, भ्रष्टाचार, परिवारवाद, दरबारी संस्कृति के सिवा और कुछ नहीं मिला है। कुछ कानून जरूर बनाये गये हैं लेकिन उन कानूनों का पालन कितनी ईमानदारी से किया गया है, यह सोचने की बात है। कांग्रेस जिन कारपोरेट घरानों को फायदा पहुंचाने का मोदी पर आरोप लगा रही है, उन्हीं नीतियों के सहारे उसने देश पर पिछले लगभग 20 वर्ष तक राज किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आर्थिक सुधार की नीतियां बड़े पूंजीपतियों को ध्यान में रखकर बनायी गयी हैं। लेकिन इस नीति के जनक तो मनमोहन सिहं और नरसिंह राव जैसे कांग्रेसी नेता ही हैं।

आर्थिक सुधार की नई नीतियां अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और विश्य व्यापार संगठन द्वारा निर्देशित है। इन्हीं नीतियों पर हमारा देश चल रहा है। हमारा व्यापार किस तरह का हो, यह विश्व व्यापार संगठन निर्धारित करता है। हमारी विदेश व्यापार नीति अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक से निर्देशित होती है। हमारी मुद्रानीति अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से निर्देशित होती है। हमारी अर्थव्यवस्था का ढांचा विश्व बैंक से निर्देशित होता है। उसमें बदले की शर्त (क्रास कंडीशनलिटी) निहित होती है। यदि आपको कोयले के लिए ऋण लेना है तो सिर्फ कोयला सेक्टर में ही शर्ते नहीं लगेंगी और कई शर्ते आपको माननी पड़ेंगी। इन्हीं नीतियों के कारण देश में विषमताएं बढ़ रही हैं। इन नीतियों को देश का कोई मुख्यमंत्री नहीं बदल सकता है। इसमें सुधार या रद्दोबदल तो केन्द्र सरकार ही कर सकती है। देश को ऐसी नीतियां बनानी होंगी जिससे हमारा घरेलू उद्योग खड़ा हो सके और विदेश व्यापार को बढ़ाकर लाभ कमाया जा सके। यही बात तो नरेन्द्र मोदी कह रहे हैं। फिलहाल गुजरात में चौबीसो घंटे बिजली की आपूर्ति और अधिक से अधिक उद्योग धंधों को लगवाकर उन्होंने अपनी क्षमता साबित कर दी है। इससे जहां प्रदेश की जनता को लगातार बिजली मिल रही है वहीं प्रदेश और देश के तमाम लोगों को गुजरात ने रोजगार दिया है। एक सरकारी आंकड़े के अनुसार देश में यदि सौ लोगों को नौकरियां मिलती हैं तो अकेले 72 नौकरियां गुजरात देता है। कृषि के क्षेत्र में भी गुजरात ने प्रगति की है। ये बोलते आंकड़े और हकीकत नरेन्द्र मोदी के विकास की गाथा खुद कर रहे हैं।

हमारे देश में प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों की कोई कमी नहीं है। हमारे पास दुनिया की सबसे अधिक उपजाऊ कृषि भूमि है। कोयला, लोहा, अभ्रक, एल्यूमिनियम, थोरियम जैसे तमाम प्राकृतिक संसाधनों की भी कमी नहीं है। देश के पास मानवीय शक्ति या संसाधनों की भी कमी नहीं है। आज देश को एक ऐसे दृढ़ संकल्प वाले दूरदर्शी नेता की जरूरत है जो हमारी सवा सौ करोड़ लोगों की ताकत को कार्यशक्ति (वर्कफोर्स) में बदल सके। देश की विशाल जनशक्ति अभी खर्राटे ले रही है। उन्हें जगाकर देश के नवनिर्माण में लगाया जा सकता है। इसलिए देश की जनता नरेन्द्र मोदी में एक ऐसे नेता का अक्स देख रही है तो इसमें बुराई क्या है? ❑

कालेधन का कारोबार

वर्तमान में व्यवस्था है कि बैंकों में 50,000 से अधिक जमा कराने पर सूचना बैंकों द्वारा इनकम टैक्स विभाग को भेज दी जाती है। ऐसी व्यवस्था विदेशी लेन–देन पर भी लागू की जानी चाहिए। चुनाव में भ्रष्टाचार मुख्य मुद्दा है जो स्वागत योग्य है, परंतु दूसरे देशों में भारत से गैर–कानूनी ढंग से भेजी जा रही रकम में इसका हिस्सा छोटा है। पहले मोटी मुर्गी को पकड़ना चाहिए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और खोखली कंपनियों पर नकेल कसी जाए तो अधिक सुधार होगा।

■ डॉ. भरत झुनझुनवला

हर पार्टी जनता को विश्वास दिला रही है कि सत्ता में आने के बाद वह विदेशों में जमा भारतीय काले धन को वापस लाने का प्रयास करेगी। ग्लोबल फाइनेंशियल इंटेग्रिटी नामक संस्था का अनुमान है कि 2011 में भारत से 424,000 करोड़ रुपये बाहर भेजे गए। यह संस्था वैश्विक स्तर पर काले धन को ट्रैक करती है। मुझे यह अनुमान सही दिखता है। यह रकम केंद्र सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, बिजली, सड़क तथा रेल पर किए जा रहे कुल खर्च के बराबर बैठती है। यदि इस रकम का प्रेषण बंद हो जाए तो इन मदों पर सरकारी खर्च दोगुना किया जा सकता है।

सामान्य रूप से काले धन को नंबर–दो के धंधे से जोड़ा जाता है, जैसे प्रापर्टी बेचकर रकम नगद में प्राप्त करने से, लेकिन वैश्विक अध्ययनों के अनुसार गैर कानूनी ढंग से धन को बाहर भेजने में इस काले धन का हिस्सा छोटा है। ज्यादा बड़ा हिस्सा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा रकम को बाहर भेजने का है। ये कंपनियां माल के दाम में उलट–फेर करके हमारी आय को बाहर ले जाती हैं, जैसे किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी ने 10,000 रुपये के केमिकल का आयात किया, लेकिन बिल 20,000 रुपये का बनवा लिया और 20,000 रुपये भारत से भेज दिए। केमिकल के सप्लायर को 20,000 रुपये मिल गए। उसने 10,000 रुपये नगद में अथवा कमीशन के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनी के मुख्यालय को अदा कर दिए। भारत से 10,000 रुपये नाजायज ढंग से बाहर चले गए। इसी प्रकार एक्सपोर्ट केबिल को कम कर दिया जाता है। 10,000 रुपये का माल एक्सपोर्ट किया गया, लेकिन बिल 5,000 का बनाया गया। शेष 5,000 रुपये बहुराष्ट्रीय कंपनी ने खरीददार से नकद ले लिए।

रकम को गैर कानूनी ढंग से भेजने का एक और उपाय प्रचलन में है। विदेशों में जाकर आप किसी कंपनी को रजिस्टर करा सकते हैं और बैंक खाता खुलवा सकते हैं। कई देशों में कंपनियों की मल्कियत की जानकारी सार्वजनिक करना जरूरी नहीं होता है। ऐसे में आपकी पहचान गुप्त रहती है। भारत सरकार को कंपनी का नाम पता लग सकता है, परंतु उसके मालिक आप हैं, यह पता नहीं लग सकता है। इस कंपनी में कोई कारोबार होना जरूरी नहीं है। इसे खोखली कंपनी कहा जाता है। ऐसी कंपनी को कमीशन अथवा साफ्टवेयर खरीदने जैसी सेवाओं के लिए भारत से पेमेंट किया जा सकता है। मेरा अनुमान है कि हमारे नेताओं एवं उद्यमियों के द्वारा भी इस प्रकार की कंपनियां बनाकर भारत से भारी रकम बाहर भेजी जा रही हैं।

संयुक्त राष्ट्र ने अफ्रीका से बाहर जा

रही गैर कानूनी रकम पर नियंत्रण को एक पैनल बनाया है, जिसके अध्यक्ष दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति थाबो बेकी हैं। उन्होंने कहा है कि इस प्रेषण का दो तिहाई हिस्सा बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा भेजा जा रहा है, एक चौथाई हिस्सा आपराधिक गतिविधियों जैसे ड्रग्स और स्मगलिंग से जा रहा है और भ्रष्टाचार और घूसखोरी का हिस्सा मात्र 5 प्रतिशत है। ग्लोबल फाइनेंशियल इंटेग्रिटी के अनुसार 60 प्रतिशत बिल के उलटफेर के माध्यम से भेजा जा रहा है। आपराधिक स्रोतों के द्वारा 35 प्रतिशत और भ्रष्टाचार का हिस्सा मात्र 3 प्रतिशत है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश के साथ–साथ भारत से गैर कानूनी प्रेषण में हुई वृद्धि से इन अनुमानों की पुष्टि होती है।

ग्लोबल फाइनेंशियल इंटेग्रिटी के अनुसार 2003 में भारत से कुल गैर कानूनी प्रेषण 31,000 करोड़ रुपये था, जो कि 2011 में बढ़कर 424,000 करोड़ रुपये हो गया। 8 साल की अवधि में इसमें 12 गुना वृद्धि हुई है। संस्था ने यह भी कहा है कि इस बात के पुख्ता प्रमाण उपलब्ध हैं कि भारत में आर्थिक सुधारों के साथ–साथ पूंजी का गैर कानूनी प्रेषण बढ़ा है। इसके विपरीत मैक्सिको में विकास दर बढ़ने के साथ–साथ पूंजी का पलायन घटा है। दोनों देशों में अंतर गवर्नेंस का है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में व्याप्त कुशासन का लाभ उठाकर गैर कानूनी ढंग से रकम का प्रेषण किया। इसके विपरीत मैक्सिको में आर्थिक विकास के साथ–साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियों का घरेलू अर्थव्यवस्था पर भरोसा बना और उन्होंने रकम का पुनर्निवेश किया। स्पष्ट होता है कि भारत से रकम केगैर कानूनी प्रेषण में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बड़ा हाथ है और यह प्रेषण आर्थिक सुधारों के बाद व्याप्त कुशासन की आड़ में बढ़ रहा है। जाहिर है कि इस प्रेषण को रोकने की कुंजी घरेलू गवर्नेंस में निहित है।

ग्लोबल फाइनेंशियल इंटेग्रिटी के अनुसार 2003 में भारत से कुल गैर कानूनी प्रेषण 31,000 करोड़ रुपये था, जो कि 2011 में बढ़कर 424,000 करोड़ रुपये हो गया। 8 साल की अवधि में इसमें 12 गुना वृद्धि हुई है। संस्था ने यह भी कहा है कि इस बात के पुख्ता प्रमाण उपलब्ध हैं कि भारत में आर्थिक सुधारों के साथ–साथ पूंजी का गैर कानूनी प्रेषण बढ़ा है। इसके विपरीत मैक्सिको में विकास दर बढ़ने के साथ–साथ पूंजी का पलायन घटा है। दोनों देशों में अंतर गवर्नेंस का है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में व्याप्त कुशासन का लाभ उठाकर गैर कानूनी ढंग से रकम का प्रेषण किया।

इस दिशा में कई सुझाव विभिन्न संस्थाओं द्वारा दिए गए हैं। पहला सुझाव है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विभिन्न देशों में किए गए कारोबार की बैलेंस शीट को सार्वजनिक करने को बाध्य किया जाए। इससे स्पष्ट हो जाएगा कि किन देशों में केवल गैर कानूनी प्रेषण से भारी लाभ दिखाया जा रहा है। इस लाभ की तह में जाकर पहचान की जा सकती है कि किस देश से इस रकम को भेजा गया है। दूसरे, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और भारतीय व्यापारियों के द्वारा खरीद और बिक्री के मूल्यों की तुलना विश्व बाजार में प्रचलित मूल्यों से की जा सकती है। इससे पता लग जाएगा कि बिल में कहां उलटफेर किया गया है। तीसरे, विभिन्न देशों द्वारा एक दूसरे को सूचना देने के संदर्भ में भारत सरकार द्वारा पहल की जाए। **जी–20 देशों ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अदा की गई टैक्स की रकम की जानकारी एक–दूसरे को देना स्वीकार किया है। हमें चाहिए कि इस प्रावधान को डब्लूटीओ में लाएं अथवा द्विपक्षीय समझौतों में इसे जोड़ें। मॉरीशस जैसे देशों में भारतीय कंपनियों द्वारा कितना टैक्स जमा किया गया है, यह जानकारी हमें उपलब्ध हो जाए तो पता लग जाएगा कि किन कंपनियों ने भारत से रकम को बाहर भेजा है।**

चौथे, दूसरे देशों के द्वारा कंपनियों के मालिकों की पहचान को सार्वजनिक करने को भारत द्वारा वैश्विक दबाव बनाया जाए। ऐसा करने से भारतीय नागरिकों के द्वारा विदेशों में बनाई गई खोखली कंपनियों का भंडाफोड़ हो जाएगा। पांचवें, एक सीमा से अधिक विदेशी रकम के लेन–देन को इनकम टैक्स डिपार्टमेंट को सूचित करना अनिवार्य बना दिया जाए। वर्तमान में व्यवस्था है कि बैंकों में 50,000 से अधिक जमा कराने पर सूचना बैंकों द्वारा इनकम टैक्स विभाग को भेज दी जाती है। ऐसी व्यवस्था विदेशी लेन–देन पर भी लागू की जानी चाहिए।

चुनाव में भ्रष्टाचार मुख्य मुद्दा है जो स्वागत योग्य है, परंतु दूसरे देशों में भारत से गैर–कानूनी ढंग से भेजी जा रही रकम में इसका हिस्सा छोटा है। पहले मोटी मुर्गी को पकड़ना चाहिए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और खोखली कंपनियों पर नकेल कसी जाए तो अधिक सुधार होगा। ❑

अपनी नाकामी का ठीकरा दूसरों के सिर पर

असम की हिंसा को सशस्त्र सेना–बल के जरिए तत्काल तो थाम ही लिया जाएगा, लेकिन कोई गारंटी नहीं है कि भविष्य में हिंसा की ज्वाला फिर कभी नहीं भड़केगी। क्योंकि समस्या का स्थाई हल खोजने की कोई पहल सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बावजूद नहीं की गई है गरीबी और भुखमरी के मारे बांग्लादेशी असम में घुसे चले आते हैं। भारत में नागरिकता और आजीविका हासिल कर लेने के आसान उपायों के चलते ही देश में घुसपैठियों की तादाद तीन करोड़ से भी ज्यादा हो गई है।

■ प्रमोद भार्गव

असम दंगों का ठीकरा नरेंद्र मोदी पर फोड़ना हकीकत से मुँह मोड़ना है। इन दंगों की असली वजह बांग्लादेश से मुस्लिमों की अवैध घुसपैठ है। यदि इस घुसपैठ को रोकने के लिए चुनावी सभा में मोदी कहते हैं कि बांग्लादेशी नागरिकों को पहचान करके वापसी भेजना देशहित में जरूरी है तो इसमें गलत क्या है? केंद्र सरकार को यही निर्देश सर्वोच्च न्यायालय भी दे चुका है। लेकिन मनमोहन सिंह सरकार इस दिशा में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ी। लिहाजा घुसपैठ से बिगड़े जन–संख्यात्मक घनत्व व उपजी दीगर समस्याओं के चलते पिछले ढाई दशक से हिंसा–प्रतिहिंसा का दौर जारी है। इस सचाई से आंखें चुराते हुए कपिल सिब्बल कह रहे है कि हिंदुस्तान में आज जो सांप्रदायिक वातावरण पैदा हुआ है उसका श्रेय नरेंद्र मोदी को जाता है। इसी से मिलता–जुलता अनर्गल बयान जम्मू–कश्मीर के मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने देकर केंद्र और असम की राज्य सरकार की कमजोरियों पर पर्दा डालने की कोशिश की है।

यहां यह भी गौरतलब है कि इस ताजा घटनाक्रम के लिए मोदी दोषी हैं, तो 2012 में बड़े पैमाने पर हुई हिंसा के लिए कौन दोषी था? इस हिंसा से सबक लेते हुए क्या सावधानियां बरती गई? क्या इसका जवाब केंद्र व असम सरकार और उनके तथाकथित रहनुमाओं के पास है? असम में बोडो आदिवासी और घुसपैठिए मुस्लिम दो विपरीत ध्रुव हैं। जाहिर है, असम की हिंसा को सशस्त्र सेना–बल के जरिए तत्काल तो थाम ही लिया जाएगा, लेकिन कोई गारंटी नहीं है कि हिंसा की ज्वाला फिर कभी नहीं भड़केगी। क्योंकि समस्या का स्थाई हल खोजने की कोई पहल सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बावजूद नहीं की गई है।

दरअसल, केंद्र ने पूर्वोत्तर के इन राज्यों को गंभीरता से लिया ही नहीं। यहां के कठिन हालात को समझने की कोशिश प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी नहीं की, जबकि असम से ही पिछले 22 साल से राज्यसभा के सदस्य हैं और इसी बूते देश के प्रधानमंत्री पद पर बैठे हैं। दरअसल, बांग्लादेशी घुसपैठियों की तादाद असम के बक्सा, चिरांग, धुबरी और कोकराझार जिलों में सबसे ज्यादा है। और इन्हीं जिलों में बोडो आदिवासी हजारों साल से रहते आ रहे हैं। लिहाजा बोडो और बांग्लादेशी मुस्लिमों के बीच रह–रहकर हिंसक वारदातें होती रही हैं। पिछले 12 साल में ही हिंसा की दर्जन भर बड़ी घटनाएं घटी हैं। इनमें साढ़े पांच सौ से भी ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं। घटनाएं घटने के बावजूद इस हिंसा का खास पहलू यह है कि हिंसा के मूल में हिंदू, ईसाई, बोडो आदिवासी और आजादी के पहले से रह रहे पुश्तैनी मुसलमान नहीं हैं। विवाद की जड़ में स्थानीय आदिवासी और घुसपैठिए मुसलमान हैं। दरअसल, बोडोलैंड स्वायत्त परिषद क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले गैर बोडो समुदायों ने बीते कुछ समय से बोडो समुदाय की अलग राज्य बनाने की दशकों पुरानी मांग का मुखर विरोध शुरू कर दिया है। इस विरोध में गैर–बोडो सुरक्षा मंच और अखिल बोडोलैंड मुस्लिम छात्र संघ की प्रमुख भूमिका रही है।

जाहिर है, यह पहल हिंदू, ईसाई और बोडो आदिवासियों को रास नहीं आ रही है। इन पुश्तैनी बाशिंदों की नाराजगी का कारण यह भी है कि सीमा पार से घुसपैठिए मुसलमान उनके जीपन यापन के संसाधनों को लगातार हथिया रहे हैं। यह सिलसिला 1950 के दशक से जारी है। अब तो आबादी के घनत्व का स्वरूप इस हद तक बदल गया है कि इस क्षेत्र की कुल आबादी में मुस्लिम बहुसंख्यक हो गए हैं। इन घुसपैठियों को भारतीय नागरिकता देने के काम में

असम राज्य कांग्रेस की राष्ट्र विरोधी भूमिका रही है।

घुसपैठियों को अपना वोट बैंक बनाने के लिए कांग्रेसियों ने इन्हें बड़ी संख्या में मतदाता पहचान पत्र एवं राशन कार्ड तक हासिल कराए हैं। नागरिकता दिलाने की इसी पहल के चलते घुसपैठिये कांग्रेस को झोली भर–भर के वोट देते रहे हैं। कांग्रेस के तरुण गोगाई इसी बूते लगातार तीसरी बार मुख्यमंत्री हैं। लेकिन बदले हालात कालांतर में कांग्रेस के लिए भी परेशानी का सबब बनने जा रहे हैं जिन्हें कांग्रेस तात्कालिक लाभ के लिए नजरअंदाज किए हुए है। घुसपैठियों के बूते कांग्रेस को बड़ी चुनौती कोलकाता के इत्र व्यवसायी बदरूद्दीन अजमल ने पेश कर दी है। 2009 में वह धुबरी से सांसद चुने गए। 2006 के विधानसभा चुनाव में उनकी ऑल इंडिया यूनाइटेड डेमोक्रेटिक पार्टी के 10 विधायक चुने गए थे। 2011 में उनके विधायकों की संख्या बढ़कर 18 हो गई है। इस नाते यूडीपी विधानसभा में सबसे बड़ा विपक्षी दल बन गया है। 2012 में कोकराझार में जो दंगे हुए थे, उस परिप्रेक्ष्य में अजमल ने कांग्रेस की गोगोई सरकार को भंग करने तक की मांग कर डाली थी।

जाहिर है, कांग्रेस घुसपैठियों को संरक्षण देकर अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का काम कर रही है। बांग्लादेश से हो रही अवैध घुसपैठ के दुष्प्रभाव पहले अलगाववाद के रूप में देखने में आ रहे थे और अब राजनीति में प्रभावी हस्तक्षेप के रूप में देखने में आ रहे हैं। इन दुष्प्रभावों को केंद्रीय व प्रांतीय नेतृत्व जानबूझकर वोट बैंक बनाए रखने की दृष्टि से अनदेखा कर रहा है। लिहाजा धुबरी जिले से सटी बांग्लादेश की जो 134 किलोमीटर लंबी सीमा–रेखा है उस पर कोई चौकसी नहीं है। नतीजतन, घुसपैठ आसानी से जारी है।

असम को बांग्लादेश से ब्रह्मपुत्र नदी अलग करती है। इस नदी का पाट इतना चौड़ा और दलदली है कि इस पर बाड़ लगाना या दीवार बनाना नामुमकिन है, लेकिन नावों पर सशस्त्र पहरेदारी के जरिए घुसपैठ को रोका जा सकता है। कोकराझार से बांग्लादेश की जमीनी सीमा नहीं जुड़ी है। अलबत्ता ब्रह्मपुत्र की जलीय सतह ही दोनों देशों को अलग करती है।

बांग्लादेश के साथ भारत की कुल 4097 किलोमीटर लंबी सीमा–पट्टी है जिस पर जरूरत के मुताबिक सुरक्षा के इंतजाम नहीं हैं। इस कारण गरीबी और भुखमरी के मारे बांग्लादेशी असम में घुसे चले आते हैं। यहां इन्हें कांग्रेसी और यूडीपी अपने–अपने वोट बैंक बनाने के लालच में भारतीय नागरिकता का सुगम आधार उपलब्ध करा देती हैं। मतदाता पहचान पत्र जहां इन्हें भारतीय नागरिकता हासिल करा देता है, वहीं राशन कार्ड की उपलब्धता इन्हें बीपीएल के दायरे में होने के कारण सस्ते में रोटी के संसाधन उपलब्ध करा देती है।

बहुउद्देशीय पहचान वाले आधार कार्ड भी घुसपैठियों ने बड़ी मात्रा में हासिल कर लिए हैं। भारत में नागरिकता और आजीविका हासिल कर लेने के इन आसान उपायों के चलते ही देश में घुसपैठियों की तादाद तीन करोड़ से भी ज्यादा हो गई है। दरअसल, बांग्लादेशी घुसपैठिये शरणार्थी बने रहते तब तक तो ठीक था, लेकिन भारतीय गुप्तचर संस्थाओं को जो जानकारियां मिल रही हैं उनके मुताबिक पाकिस्तानी गुप्तचर एजेंसी इन्हें भारत के विरुद्ध उकसा रही है। सऊदी अरब से धन की आमद इन्हें धार्मिक कट्टरपंथ का पाठ पढ़ाकर आत्मघाती जिहादियों की नस्ल बनाने में लगी है। बांग्लादेश से इन्हें हथियारों का जखीरा उपलब्ध हो रहा है।

जाहिर है, यह जिहादी उपाय भारत के लिए किसी भी दृष्टि से शुभ नहीं हैं। लिहाजा घुसपैठियों को वापस भेजने की जरूरत जताकर भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार नरेंद्र मोदी ने कोई अपराध नहीं किया है। कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी अपने भाषणों में बार–बार यह कह रही हैं कि भाजपा धर्म के नाम पर लोगों को बांट रही है, जबकि कांग्रेस सबको साथ लेकर चल रही है। लेकिन कांग्रेस नेतृत्व को समझना चाहिए कि सबको साथ लेकर चलने की प्रक्रिया में घुसपैठियों का साथ देना भारत के भविष्य और आंतरिक सुरक्षा के लिए शुभ लक्षण नहीं है। लिहाजा घुसपैठ पर अंकुश लगाने और घुसपैठियों को खदेड़ने के उपाय तलाशने ही होंगे।

असम की हिंसा को सशस्त्र सेना–बल के जरिए तत्काल तो थाम ही लिया जाएगा, लेकिन कोई गारंटी नहीं है कि भविष्य में हिंसा की ज्वाला फिर कभी नहीं भड़केगी। क्योंकि समस्या का स्थाई हल खोजने की कोई पहल सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बावजूद नहीं की गई है गरीबी और भुखमरी के मारे बांग्लादेशी असम में घुसे चले आते हैं। भारत में नागरिकता और आजीविका हासिल कर लेने के आसान उपायों के चलते ही देश में घुसपैठियों की तादाद तीन करोड़ से भी ज्यादा हो गई है। ❑

विस्थापन से बड़ी कोई त्रासदी नहीं

आंकड़ों को गौर से देखें तो पाएंगे कि देश की अधिसंख्य आबादी अब भी उस क्षेत्र में रह रही है जहां जीडीपी शहरों की तुलना में छठा हिस्सा भी नहीं है। यही वजह है कि गांवों में जीवन–स्तर में गिरावट, शिक्षा, स्वास्थ्य, मूलभूत सुविधाओं का अभाव, रोजगार की कमी। इसलिए लोग बेहतर जीवन की तलाश में शहरों की ओर आ रहे हैं. . .आमतौर पर विकास या अन्य कारणों से जो हजारों लोग पुश्तैनी घर छोड़ते हैं, वे जमीन के मालिक होते ही नहीं हैं। इस रूप में मजदूरी कर पेट पालने वालों के हाथ कुछ लगता ही नहीं है।

■ पंकज चतुर्वेदी

विचित्र विडंबना है, कोई अपने घर–गांव से बेदखल किया जाता है तो आज का अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र को पैताने रख कर उसमें विकास के प्रतिमान तलाश रहा है। हकीकत यह है कि 'आजादी के बाद भारत की सबसे बड़ी त्रासदी किसको कहा जा सकता है?'

यदि इस सवाल का जवाब ईमानदारी से खोजा जाए तो वह होगा – *कोई पचास करोड़ लोगों का अपने पुश्तैनी घर, गांव, रोजगार से पलायन। और 'आने वाले दिनों की सबसे भीषण त्रासदी क्या होगी?' आर्थिक– सामाजिक ढांचे में बदलाव का अध्ययन करें तो जवाब होगा – पलायन से उपजे शहरों का 'अरबन–स्लम' में बदलना और सामजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय और विकास की परिभाषा में केवल पूंजी की जय–जयकार होना। पलायन विकास के नाम पर उजाड़े गए लोगों का, पलायन आतंकवाद के भय से, पलायन रोजी की तलाश में और पलायन पारंपरिक दक्षता या वृत्ति के बाजारवाद की भेट चढ़ अप्रासंगिक हो जाने के कारण। जब से मुल्क में विकास का 'कंक्रीट मॉडल' परवान चढ़ा, तभी से पलायन सुरसामुख की तरह विस्तारित हुआ।*

सौ साल पहले बनी राजधानी दिल्ली को उगाने के लिए पहली बार बुंदेलखड, राजस्थान आदि से हजारों लोगों को दिल्ली लाया गया था। उसके बाद देश की आजादी की पहली घटना ही रक्तरंजित विस्थापन की थी। इसी का परिणाम है कि देश की लगभग एक तिहाई यानी 31.16 प्रतिशत आबादी अब शहरों में रह रही हैं। भारत में इस समय कोई 3600 बांध हैं, इनमें से 3300 आजादी के बाद ही बांध बनें। अनुमान है कि प्रत्येक बांध की चपेट में औसतन बीस हजार लोग घर–गांव, रोटी–रोजगार से उजाड़े गए। यानी कोई पौने सात करोड़ लोग शहरों के लिए बिजली या खेतों के लिए पानी के नाम पर विस्थापित हुए। यह भी साजिश है या अनायास कि बांधों के अधिकांश प्रोजक्ट अनुसूचित कही जाने वाली जातियां के इलाकों में ही रहे, तभी विस्थापित लोगों में 40 प्रतिशत आदिवासी और 20 प्रतिशत अनुसचित जाति के लोग हैं। जबरिया उजाड़े गए 36 फीसद लोग ग्रामीण अंचल के गरीब परिवार के रहे हैं।

मजदूरी या रोजगार के लिए घर छोड़ने के हर साल पांच लाख से ज्यादा मामले बुंदेलखंड, राजस्थान, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से आते हैं। 2011 की जनगणना के आंकड़े गवाह हैं कि गांव छोड़ कर शहर की ओर जाने वालों की संख्या बढ़ रही है और अब 37 करोड 70 लाख लोग शहरों के बाशिंदे हैं। सन 2001 और 2011 के आंकड़ों की तुलना करें तो पाएंगे कि इस अवधि में शहरों की आबादी में नौ करोड़ दस लाख का इजाफा हुआ जबकि गावों की आबादी नौ करोड़ पांच लाख तक बढ़ी।

कहा जा सकता है कि देश की लगभग दस प्रतिशत आबादी महज बांध के नाम पर उजाड़ी जा चुकी है। अन्य कारणों से उजाड़ने के आंकड़े जोड़े जाएं तो मुल्क की 35 प्रतिशत आबादी किसी न किसी कारण बीते साठ सालों में पलायित हुई है। इनमें बांध, सड़क, कारखाने, संरक्षित वन, प्राकृतिक आपदाएं सहित न जाने कितने कारक हैं। विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया के आधुनिक सिद्धांत को पलायन का कारण मान भी लिया जाए तो पुनर्वास भी तो उसी नीति का दूसरा समान पहलू होना चाहिए!

सरकार स्वीकारती है कि उजाड़े गए लोगों का फिर से बसाने में संतुष्टि बमुश्किल पचीस प्रतिशत है, यानी तीन चौथाई उजाड़े गए लोग पुनर्वास नीति से हताश हैं। पश्चिम बंगाल के फरक्का थर्मल पावर प्लांट के कारण 63,325 लोगों को घर–बार से उजाड़ने का आंकड़ा 1994 में विश्व बैंक ने दिया था। उनके पुनर्वास का आंकड़ा शून्य रहा। जाहिर है

राज्य सरकार ने लोगों को अपने हाल पर छोड दिया था। तीन साल पहले का बंगाल का सिंगूर या ओडिशा का पास्को विवाद जमीन से उजड़ने से ज्यादा सही तरीके से तत्काल पुनर्वास को लेकर ही था और सरकार के पास इसकी कोई स्पष्ट नीति नहीं है। कर्नाटक के बागलकोट जिले में कृष्णा नदी पर चालीस सालों से बन रहे अलमाटी बांध में 1969 की जनगणना के आधार पर 136 गांवों के एक लाख अस्सी हजार लोगों के विस्थापन का अंदाज था। मामला कभी अदालत तो कभी सियासत में उलझा रहा। सरकार का दावा था कि इस परियोजना का पुनर्वास देश के सामने मिसाल होगी लेकिन आगे खिसकती परियोजना के साथ बढ़ती आबादी से सब सपने हवा हो गए। अलमाटी बांध वहां लोगों के लिए मुफलिसी, सामाजिक बिखराव व बीमारियों की सौगात लाया हे। नर्मदा बांध की कहानी भी इससे अलग नहीं है। बस्तर में 'सलवा जुडूम' मुहिम के चलते हजारों लोग राहत शिविरों में आ गए। हजारों आंध्र प्रदेश या ओडिशा में चले गए। आज की तारीख में वे न घर के रहे न घाट के।

गरीबी और बदहाली के अलावा सबसे बड़ी विडंबना यह कि इन शिविरों में वे अपना खान–पान, बोली–भाषा और संस्कृति सब कुछ बिसरा रहे हैं। एक तरफ नक्सली हैं तो दूसरी ओर पुलिस। आतंकवाद ग्रस्त कश्मीर के पंडित जम्मू के राहत शिविरों में नारकीय जीवन जी रहे हैं। उत्तर–पूर्वी राज्यों में भी आतंकवाद के कारण पलायन के किस्से सामने आते हैं। कर्नाटक का नागरहाले हो या मध्य प्रदेश का पन्ना संरक्षित वन क्षेत्र, हर जगह आदिवासियों को जंगल के नाम पर खदेड़ दिया गया। 19 राज्यों में 237 स्पेशल इकोनोमिक जोन यानी सेज के नाम पर एक लाख 14 हजार लोगों को जमीन से बेदखल करने का आंकड़ा सरकारी है। इन लोगों के खेतों में काम करने वाले 84 हजार लोगों के बेराजगार होने का दर्द तो मुआवजे के लायक भी नहीं माना गया।

मजदूरी या रोजगार के लिए घर छोड़ने के हर साल पांच लाख से ज्यादा मामले बुंदेलखंड, राजस्थान, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से आते हैं। 2011 की जनगणना के आंकड़े गवाह हैं कि गांव छोड़ कर शहर की ओर जाने वालों की संख्या बढ़ रही है और अब 37 करोड 70 लाख लोग शहरों के बाशिंदे हैं। सन 2001 और 2011 के आंकड़ों की तुलना

करें तो पाएंगे कि इस अवधि में शहरों की आबादी में नौ करोड़ दस लाख का इजाफा हुआ जबकि गावों की आबादी नौ करोड़ पांच लाख तक बढ़ी। देश के सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी में सेवा क्षेत्र का योगदान 60 फीसद पहुंच गया है जबकि खेती की भूमिका दिनों–दिन घटते हुए 15 प्रतिशत रह गई है। जबकि गावों की आबादी अभी भी कोई 68.84 करोड़ है यानी देश की कुल आबादी का दो–तिहाई।

आंकड़ों को गौर से देखें तो पाएंगे कि देश की अधिसंख्य आबादी अब भी उस क्षेत्र में रह रही है जहां जीडीपी शहरों की तुलना में छठा हिस्सा भी नहीं है। यही वजह है कि गांवों में जीवन–स्तर में गिरावट, शिक्षा, स्वास्थ्य, मूलभूत सुविधाओं का अभाव, रोजगार की कमी। इसलिए लोग बेहतर जीवन की तलाश में शहरों की ओर आ रहे हैं। हालांकि 2013 में संसद ने भूमि अधिग्रहण संबंधी विधेयक में विकास के लिए जमीन अधिग्रहण के कानून को बेहद सख्त बनाया गया है। लेकिन आमतौर पर विकास या अन्य कारणों से जो हजारों लोग पुश्तैनी घर छोड़ते हैं, वे जमीन के मालिक होते ही नहीं हैं। इस रूप में मजदूरी कर पेट पालने वालों के हाथ कुछ लगता ही नहीं है। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकर संधिक की धारा 11.0 में कहा गया है कि दुनिया के हर नागरिक को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा का अधिकार है। परंतु दुखद है कि इतनी बड़ी संख्या में पलायन कर रही आबादी के पुनर्वास की देश में कोई योजना नहीं है। ❑

बिजली-पानी बचाने की हो जुगत

विकसित देशों के वैज्ञानिक बिन पानी सिर्फ हवा से संयंत्रों को ठंडा करने वाली प्रक्रिया का अनुमोदन करते हैं। एक लीटर बोतलबंद पानी के उत्पादन में तीन लीटर पानी खर्च होता है। स्तरीय प्लास्टिक बोतलें पॉलीथाइलीन टेरेफाइथोलेट (पेटा) से बनती हैं। पेटा का उत्पादन प्राकृतिक गैस व पेट्रोलियम से होता है। हकीकत यह है कि एक टन पेटा बोतल के उत्पादन प्रक्रिया के दौरान तीन टन कार्बन– डाईआक्साइड हवा में घुल जाती है। ऐसे में दोष बदलते मौसम को क्यों? बहरहाल भारत अपने अनुकूल बिजली व पानी की नीति आगे बढ़ाये। क्या आने वाली सरकार कुछ नया करेगी?

■ **अरुण तिवारी**

मई माह में गर्मी का पारा चढ़ने लगा है और बिजली की आंख–मिचौनी शुरू हो चुकी है। नल भी धोखा देने लगा है। प्रश्न यह है कि बिजली–पानी की हायतौबा से बचने के लिए बचत के तौर–तरीके क्या हों? क्या सरकारी विज्ञापनों से ही यह

संभव है या नजरिया कुछ और आधुनिक करना पड़ेगा? मई माह में ही अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा दिवस मनाया जाता है। इस मामले में अंतरराष्ट्रीय नजरिया बेहद बुनियादी है और ज्यादा व्यापक भी। पश्चिम के लोग मानते हैं कि पानी ऊर्जा है और ऊर्जा पानी। यदि पानी बचाना है तो ऊर्जा बचाओ। यदि ऊर्जा बचानी है तो पानी की बचत करना सीखो। बिजली के कम खपत वाले फ्रिज, बल्ब, मोटर का उपयोग करो। पेट्रोल की बजाय प्राकृतिक गैस से कार चलाओ। कोयला व तैलीय ईंधन से लेकर गैस संयंत्रों तक को ठंडा करने की ऐसी तकनीक उपयोग करो जिसमें कम से कम पानी लगे। उन्हें हवा से ठंडा करने की तकनीक का उपयोग करो। ऊर्जा बनाने के लिए हवा, कचरा तथा सूरज का उपयोग करो। फोटोवोल्टिक तकनीक अपनाओ। पानी गर्म करने, खाना बनाने आदि में कम से कम ईंधन का उपयोग करो। उन्नत चूल्हे तथा उस ईंधन का उपयोग करो, जो बजाए किसी फैक्टरी में बनने के, हमारे आसपास हमारे द्वारा तैयार व उपलब्ध हो। गोबर ऐसा ही ईंधन है।

पानी और आग का यह रिश्ता सचमुच बेहद दिलचस्प है। सोचिए, यदि गैस, ईंधन व बिजली जैसे ऊर्जा के स्रोत नहीं होंगे, तो हमारी गाड़ियां, टयूबवैल, रसोई के गैस स्टोव कैसे चलेंगे? बिना ऊर्जा कोल्ड स्टोर में फल सब्जी व दूसरे उत्पादों की सुरक्षा कैसे संभव होगी? बर्फ व आइसक्रीम कहां संभव होगी? दूसरी तरफ चित्र यह है कि यदि ताजे पानी की कमी हो गई तो हम पेट्रोल, प्लास्टिक, लोहा, बिजली, गैस जैसे तमाम जरूरी हो चुके उत्पादनों से महरूम हो जाएंगे। हकीकत यही है कि पानी के बिना न बिजली बन सकती है और न ही ईंधन व दूसरे उत्पाद बनाने वाले ज्यादातर उद्योग

अमेरिका के एक दर्जन बड़े बिजली संयंत्र या तो बंद हो गये हैं अथवा बंदी के कगार पर हैं। वहां कई बड़े बांध तोड़ दिए गए हैं। बताते हैं कि आठ राज्यों ने तो नये बिजली संयंत्र लगाने से ही इंकार कर दिया है। भारत में भी विद्युत संयंत्रों से उत्पादन में गिरावट का चित्र ऐसा ही है। केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण के अनुसार भारत की 89 प्रतिशत पनबिजली परियोजनाएं अपनी स्थापना क्षमता से कम उत्पादन कर रही हैं।

चल सकते हैं। किसी भी संयंत्र को ठंडा करने तथा कचरे के शोधन के लिए पानी चाहिए ही। कोयले से बिजली बनाने वाले थर्मल पावर संयंत्रों में इलेक्ट्रिक जनरेटर घुमाने के लिए जिस भाँप की जरूरत पड़ती है, वह पानी से ही संभव है। परमाणु ऊर्जा संयंत्र 25 से 60 गैलन पानी प्रति किलोवाटर घंटा की मांग करता है। तेल साफ करके पेट्रोल बनाना बिना पानी के संभव नहीं। बायो डीजल की खेती क्या बिना पानी के संभव है ? उल्लेखनीय है कि यह अमेरिकी नजरिया एक खास अनुभव के बाद बना है। 'ऑफ कन्सर्न साइंटिस्ट' की एक रिपोर्ट बताती है कि बिजली बनाने में अमेरिका प्रतिदिन इतना ताजा पानी खर्च करता है, जितना न्यूयार्क जैसे 180 शहर मिलकर एक दिन में करते हैं। यह आंकड़ा 40 बिलियन गैलन प्रतिदिन का है। अमेरिका में पानी की कुल खपत का मात्र 5 प्रतिशत उद्योग, 13 प्रतिशत घरेलू उपयोग, 37 प्रतिशत खेती, 5 प्रतिशत अन्य और सबसे ज्यादा 41 प्रतिशत ऊर्जा उत्पादन में खर्च होता है। एक ओर ऊर्जा उत्पादन के लिए ताजे पानी का खर्च बढ़ रहा है, वहीं तरफ किसान, उद्योग और शहर के बीच खपत व बंटवारे के विवाद बढ़ रहे हैं। आकलन यह है कि कम होती बारिश व सूखा मिलकर 2025 तक ली वेगास, साल्ट लेक, जार्जिया, टेनेसी जैसे इलाकों के पानी प्रबंधन पर लाल निशान लगा देंगे। चेतावनी यह भी है कि 2050 तक कोलरेडा जैसी नदी के प्रवाह में भी 20 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। खतरनाक यह है कि संयंत्रों से निकलने वाले गर्म पानी के भीतर का पूरा जैविक तंत्र नष्ट हो जाता है। पानी की शुद्धता के लिए जरूरी मछलियां, दूसरे जीव व वनस्पति ही नहीं, आसपास की मिट्टी की गुणवत्ता तथा खेती भी संकटग्रस्त हो जाती है।

सिर्फ इतना नहीं, थर्मल पावर प्लांट से निकलने वाले ऑर्सेनिक, पारा, सीसा जैसे खतरनाक रसायन पूरा जीवन ही नष्ट कर देते हैं। अमेरिका के थर्मल पावर संयंत्रों से 120 मिलियन टन कचरा छोड़ने का आंकड़ा है। अमेरिका के एक दर्जन बड़े बिजली संयंत्र या तो बंद हो गये हैं अथवा बंदी के कगार पर हैं। वहां कई बड़े बांध तोड़ दिए गए हैं। बताते हैं कि आठ राज्यों ने तो नये बिजली संयंत्र लगाने से ही इंकार कर दिया है।

भारत में भी विद्युत संयंत्रों से उत्पादन में गिरावट का चित्र ऐसा ही है। केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण के अनुसार भारत की 89 प्रतिशत पनबिजली परियोजनाएं अपनी स्थापना क्षमता से कम उत्पादन कर रही हैं। सैड्रप के अनुसार टिहरी बांध की उत्पादन क्षमता 2400 मेगावाट दर्ज है लेकिन व्यवहार में वह औसतन 436 मेगावाट ही उत्पादित कर रहा है। वहां 700 मेगावाट से अधिक उतपदन कभी हुआ ही नहीं। वाष्पन–गाद निकासी में पानी व पैसे की निकासी तथा मलवा निष्पादन के कुप्रबंधन के जरिए हुए नुकसान का गणित लगायें तो बड़ी पनबिजली परियोजनाओं से लाभ कमाने की तस्वीर शुभ नहीं दिखाई देती। बावजूद इसके विकास के नये पैमानों पर अमेरिका को नजीर के रूप में पेश करने वाले हमारे नेता, अफसर, योजनाकार और खुद नागरिकों ने अमेरिका और खुद के इन अनुभवों से कुछ नहीं सीखा।

सच यह है कि भारतीयों के आधुनिक होते रहन–सहन के मद्देनजर सारा जोर पानी व बिजली की खपत पर ही है? शायद इसी कारण बिहार व उत्तर–पूर्व समेत भारत के तमाम राज्य बड़ी पनबिजली परियोजनाओं के लिए लालायित दिख रहे हैं। वे इसे 'क्लीन एनर्जी–ग्रीन एनर्जी' के रूप में प्रोत्साहित कर रहे हैं। हमें देखना चाहिए कि बायो डीजल उत्पादन का विचार भारत की आबोहवा व मिट्टी के कितना अनुकूल है। स्वच्छ ऊर्जा वह होती है, जिसके उत्पादन में कम पानी लगे तथा कार्बनडाइऑक्साइड व दूसरे प्रदूषक कम निकले। इन दो मानदंडों को सामने रखकर सही आकलन संभव है। परमाणु व कोयले की तुलना में सूरज, हवा, पानी तथा ज्वालामुखियों में मौजूद ऊर्जा को बिजली में तब्दील करने में कुछ कम पानी चाहिए।

मक्का से बनने वाले कॉर्न इथेनॉल को 0.6–2.0 जीपीएम, सैलुलोज बायोडीजल को 0.1 से 0.6 जीपीएम और गैसोलिन को सबसे कम 0.1 से 0.3 जीपीएम पानी चाहिए। यह तीनों ईंधन यातायात में ही प्रयोग होते हैं। सैलुलोज बायोडीजल सूखा क्षेत्रों की घास व टहनियों से बनाया जाता है। इसीलिए विकसित देशों के वैज्ञानिक बिन पानी सिर्फ हवा से संयंत्रों को ठंडा करने वाली प्रक्रिया का अनुमोदन करते हैं। एक लीटर बोतलबंद पानी के उत्पादन में तीन लीटर पानी खर्च होता है। स्तरीय प्लास्टिक बोतलें पॉलीथाइलीन टेरेफाइथोलेट (पेटा) से बनती हैं। पेटा का उत्पादन प्राकृतिक गैस व पेट्रोलियम से होता है। हकीकत यह है कि एक टन पेटा बोतल के उत्पादन प्रक्रिया के दौरान तीन टन कार्बन–डाईआक्साइड हवा में घुल जाती है। ऐसे में दोष बदलते मौसम को क्यों? बहरहाल भारत अपने अनुकूल बिजली व पानी की नीति आगे बढ़ाये। क्या आने वाली सरकार कुछ नया करेगी? ❑

सार्वजनिक शिक्षा से विमुख होती सरकार

आने वाला समय गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए चुनौती भरा है। जैसा कि आशंका व्यक्त की जा रही है कि कहीं ऐसा न हो कि शिक्षा के अधिकार कानून के नाम पर उनसे शिक्षा का अधिकार छीन न लिया जाए। यह दुखद है कि शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के उक्त प्रावधान के परिणामों पर न संसद में उस समय गंभीरता से विचार किया गया, जब यह कानून पारित किया जा रहा था और न ही आज कहीं कोई बहस है, जब देश एक नई सरकार चुनने की राह पर है। यहां तक कि शिक्षा का मुद्दा देश के बड़े दलों के चुनाव घोषणा–पत्रों से ही गायब है।

■ महेश चन्द्र पुनेठा

शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के तहत निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत सीटें गरीब तबके के बच्चों के लिए आरक्षित कर दी गई थीं। इस प्रावधान के बाद अब निम्न वर्ग के बच्चों के लिए भी निजी विद्यालयों के दरवाजे खुल गए हैं। इसके तहत गरीब तबके के उन बच्चों को एक वाउचर दिया जाता है जो निजी विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं। वाउचर उतनी ही धनराशि का होगा जितना सरकार सरकारी स्कूलों में एक वर्ष में एक बच्चे के ऊपर खर्च कर रही है। ऐसी स्थिति में सरकारी स्कूलों में छात्र नामांकन की दर गिरना स्वाभाविक है। बाजारवाद, अंग्रेजी माध्यम के बढ़ते प्रभाव और सरकारी शिक्षा की बदहाली के चलते जहां पहले ही सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या कम होती जा रही है, वहां निजी विद्यालयों में गरीब बच्चों के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण ने सरकारी स्कूलों की हालत और पतली कर दी है। इससे सरकारी स्कूलों में बच्चों की नामांकन दर तेजी से गिरने लगी है। कम छात्र संख्या के चलते अनेक स्कूल बंद होने लगे हैं। यही स्थिति रही तो एक आगामी दशक में सरकारी प्रारंभिक विद्यालयों के सामने अस्तित्व का संकट पैदा हो जाएगा। केवल वहीं सरकारी विद्यालय दिखेंगे, जहां निजी विद्यालयों की पहुंच नहीं है। अब नए सरकारी स्कूल खोलने के स्थान पर सरकार द्वारा गैर–सरकारी संस्थाओं को स्कूल खोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। निजी विद्यालयों को संचालित करना अब आसान भी हो जाएगा।

इसके दो कारण हैं। पहला, दूरस्थ क्षेत्रों में सरकारी स्कूलों के न रहने से निजी विद्यालयों को छात्र आसानी से मिल जाएंगे और दूसरा, इन 25 प्रतिशत बच्चों के नाम पर मिलने वाली सरकारी धनराशि से निजी स्कूल अपने आधारभूत खर्चे आसानी से निकाल लेंगे। अन्य 75 प्रतिशत बच्चों से शुल्क के रूप में मिलनी वाली राशि उनका विशुद्ध लाभ होगा। साथ ही 25 प्रतिशत बच्चों के लिए सरकार की ओर से छात्रवृत्ति, मध्याह्न भोजन, ड्रेस, पाठ्य पुस्तक आदि के लिए मिलने वाली धनराशि में से कमीशनखोरी अलग होगी।

गरीब–वंचित वर्ग के बच्चों को वाउचर देकर निजी विद्यालयों में जाने के लिए प्रोत्साहित करना एक तरह से सरकार द्वारा खुद यह स्वीकार कर लेना है कि निजी विद्यालयों की गुणवत्ता सरकारी विद्यालयों से बेहतर है। कैसी विडंबना है कि जिस सरकार को सार्वजनिक शिक्षा को मजबूत करते हुए समान शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए था, वही शिक्षा के निजीकरण का मार्ग प्रशस्त कर रही है। यह शिक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव है। यह एक सोची–समझी रणनीति के तहत हो रहा है। लोक कल्याणकारी सरकारें सार्वजनिक शिक्षा से अपना पल्ला झाड़ना चाहती हैं। इसलिए विदेशों में हुए इस तरह के प्रावधानों की विफलता से भी कोई सबक नहीं ले रही है। वह दिन दूर नहीं जब सार्वजनिक शिक्षा भारत में नाममात्र के लिए रह जाएगी। जैसा कि शहरी क्षेत्रों में दिखाई भी देने लगा है।

कुछ लोगों को प्रथम दृष्टया यह

गरीब–वंचित वर्ग के बच्चों को वाउचर देकर निजी विद्यालयों में जाने के लिए प्रोत्साहित करना एक तरह से सरकार द्वारा खुद यह स्वीकार कर लेना है कि निजी विद्यालयों की गुणवत्ता सरकारी विद्यालयों से बेहतर है। कैसी विडंबना है कि जिस सरकार को सार्वजनिक शिक्षा को मजबूत करते हुए समान शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए था, वही शिक्षा के निजीकरण का मार्ग प्रशस्त कर रही है।

कदम सरकारी शिक्षा की गिरती गुणवत्ता का समाधान और जनहितकारी लग सकता है। यह भी लग सकता है कि सरकारी गरीब बच्चों को भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना चाहती है। बहुत से गैर–सरकारी संगठन और निजीकरण उदारीकरण के समर्थक ऐसा ही प्रचारित–प्रसारित कर रहे हैं। लेकिन यह तात्कालिक प्रत्यक्षीकरण और सतही समझदारी है। उस दिन की कल्पना करें जिस दिन सरकारी विद्यालय पूरी तरह बंद हो जाएंगे। तब 25 प्रतिशत से अधिक गरीब बच्चों का क्या होगा? अत्यधिक गरीब बच्चों को तो निजी विद्यालयों में प्रवेश मिल जाएगा, औसत गरीब बच्चों का क्या होगा? तब क्या उन्हें गहंगी शिक्षा को खरीदने के लिए विवश या शिक्षा से वंचित नहीं होना पड़ेगा? क्या निजी विद्यालयों की मनमानी और अधिक नहीं बढ़ जाएगी? निजी विद्यालयों की मनमानी से जब आज साधन सम्पन्न तबका भी त्रस्त हैं तो इन गरीब लोगों की क्या बिसात?

इस स्थिति का सबसे अधिक खामियाजा आदिवासी, अनुसूचित जाति–जनजाति तथा अल्पसंख्यक वर्ग के उन बच्चों को भुगतना पड़ेगा, जिनके अभिभावकों में आज भी शिक्षा के प्रति गहरी उदासीनता दिखाई देती है। यह तथ्य किसी से छुपा नहीं है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों में सबसे अधिक संख्या इन जाति तथा वर्ग के बच्चों की ही है।

एक और आशंका नजर आने लगी है। इस बात की क्या गारंटी है कि निजी विद्यालयों में इन 25 प्रतिशत बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिल पाएगी? जो विद्यालय इन्हें प्रवेश देने पर ही नाक–भौ सिकोड़ रहे हैं और गरीब बच्चों को लेकर

लोक कल्याणकारी सरकारें सार्वजनिक शिक्षा से अपना पल्ला झाड़ना चाहती हैं। इसलिए विदेशों में हुए इस तरह के प्रावधानों की विफलता से भी कोई सबक नहीं ले रही है। वह दिन दूर नहीं जब सार्वजनिक शिक्षा भारत में नाममात्र के लिए रह जाएगी। जैसा कि शहरी क्षेत्रों में दिखाई भी देने लगा है।

अनेक आग्रहों–पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं, वे इन बच्चों के साथ भेदभाव करेंगे ही। इन स्कूलों का मानना है कि गरीब वंचित तबके के बच्चों के आने से शैक्षिक माहौल खराब हो जाएगा। क्या आशा की जा सकती है कि इन बच्चों के साथ वहां उचित व्यवहार किया जाएगा?

अभी तक के अनुभवों से पता चला है कि इन गरीब बच्चों की ओर कक्षा में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। इनकी एक अलग कैटेगरी बना दी गई है। इससे बच्चे न केवल गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित हो रहे हैं बल्कि एक तरह के भेदभाव के शिकार भी हो रहे हैं।

हाल ही में कुछ ऐसी खबरें आई हैं, जिनसे पता चलता है कि निजी स्कूलों में कोटे के गरीब बच्चों के साथ दुर्व्यवहार हो रहा है। जिस समावेशित शिक्षा की बात की जा रही थी, वह केवल सैद्धांतिक सिद्ध हो रही है। साथ ही एक नई समस्या माध्यम भाषा के चलते पैदा हो रही है। इन बच्चों के घर में अंग्रेजी का बिल्कुल इस्तेमाल न होने के कारण शिक्षण माध्यम का अंग्रेजी होना एक नई जटिलता पैदा कर रहा है। अपनी परिवेश की भाषा के माध्यम से सरकारी स्कूलों में ये बच्चे जो थोड़ा बहुत सीखते भी, कहीं उससे भी वंचित न रह जाएं?

एक सवाल और पैदा होता है कि इन बच्चों की फीस और पाठ्य सामग्री का खच्र तो सरकार वहन करेगी लेकिनि निजी विद्यालयों में समय–समय पर इसके अलावा भी अनेक शुल्क वसूल किए जाते हैं। तमाम तरह के तामझाम किए जाते हैं। उनका क्या होगा? जब ये बच्चे शुल्क अदा नहीं कर पाएंगे और अन्य बच्चों की तरह सुविधाओं का लाभ नहीं ले पाएंगे तो क्या इन बच्चों में हीनताबोध नहीं पैदा होगा? ये कुंठा के शिकार नहीं होंगे? इन प्रश्नों पर समय रहते विचार किए जाने की आवश्यकता है।

इस दृष्टि से आने वाला समय गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए चुनौती भरा है। जैसा कि आशंका व्यक्त की जा रही है कि कहीं ऐसा न हो कि शिक्षा के अधिकार कानून के नाम पर उनसे शिक्षा का अधिकार छीन न लिया जाए। यह दुखद है कि शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के उक्त प्रावधान के परिणामों पर न संसद में उस समय गंभीरता से विचार किया गया, जब यह कानून पारित किया जा रहा था और न ही आज कहीं कोई बहस है, जब देश एक नई सरकार चुनने की राह पर है। यहां तक कि शिक्षा का मुद्दा देश के बड़े दलों के चुनाव घोषणा–पत्रों से ही गायब है। ❑

समाचार परिक्रमा

देश पर मंडराया अल-नीलो का खतरा

विश्व मौसम विज्ञान संगठन ने अल–नीनो भारत के लिए संकट पैदा करने वाला है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन के अनुसार अल–नीनो के कारण जून से अगस्त तक भारत, थाइलैंड, मलयेशिया, पूर्वी आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और जापान में भयानक सूखा पड़ने की संभावना है वही दूसरी ओर दक्षिण अमेरिका के पूर्वी और पश्चिमी तटीय देश और उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट और प्रशांत महासागर के मध्य भाग में जमकर बारिश होगी। विश्व मौसम विज्ञान संगठन के अनुसार इसका असर कितना और कहाँ होगा, इसका ठीक से अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, लेकिन इसकी प्रगति को देखते हुए इसका भारतीय मानसून पर विपरीत असर पड़ेगा। क्या है अल–नीनो और ला–नीनो अल–नीनो और ला–नीनो समुद्री घटनाक्रम हैं जो कभी–कभार घटित होते हैं। अल–नीनो में विषुवत रेखा के आसपास समुद्र का तापमान अप्रत्याशित रूप से बढ़ जाता है तो कहीं भारी सूखा, कहीं बहुत गर्म और कहीं बहुत बारिश करता है जबकि ला–नीनो समुद्र के तापमान को अप्रत्याशित तौर पर घटा देता है। ❑

अल नीनो से होगा करोड़ों का नुकसान

मौसम विभाग ने अल नीनो की वजह से इस वर्ष मानसून सामान्य से कम रहने की आशंका जताई है। तो वही उद्योग मंडल एसोचैम के अनुसार अल नीनो से भारतीय अर्थव्यवस्था पर खासा भारी पड़ सकता है। एसोचैम के अनुसार देश की प्रगति प्रभावित होगी साथ ही 1.80 लाख करोड़ रपए का नुकसान होने का भी अनुमान है। यह बात ऐसोचैम ने एक रपट में कही है। एसोचैम के अनुसार मानसून की कमी से रोजगार के अवसर तो प्रभावित होंगे ही साथ ही खाद्य महंगाई और ज्यादा मुंह खोल सकती है। जिससे देश की जीडीपी प्रभावित हो सकती है और करीब 1.80 लाख करोड़ रपए का नुकसान होगा। रिपोर्ट में कहा गया कि देश में कुल कृषि भूमि का करीब 60 प्रतिशत क्षेत्रफल ऐसा है जहां वष पर आश्रित रहना पड़ता है और एक प्रतिशत बारिश की कमी जीडीपी 0.35 प्रतिशत का प्रभाव डालती है। देश में सेवा और औद्योगिक उत्पादों की मांग को बढ़ाने के लिए बेहतर कृषि दर का होना बहुत जरूरी है। एसोचैम ने देश में सूखे जैसी स्थिति का सामना करने के लिए सरकार के समक्ष 12 सूत्री मसौदा रखा है। उद्योग मंडल का कहना है कि कृषि क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं पर ध्यान देते हुए सरकार को कृषि बीमा कवर को बढ़ाने के साथ– साथ वित्तीय संस्थानों से सूखा प्रभावित क्षेत्रों में बिना कोई देरी किए हुए फसल बीमा दावों का निपटारा करना होगा। ❑

हरी मिर्च पर लगाई सऊदी अरब ने रोक

सऊदी अरब ने भारत से हरी मिर्च के आयात पर रोक लगा दी है जिसकी वजह उन्होंने मिर्च में कीटनाशकों का अधिक मात्रा में पाया जाना बताया है। यह प्रतिबंध 30 मई से लागू हो जाएगा। भारत से ताजी सब्जियों का सऊदी अरब पांचवां बड़ा आयातक देश है। अभी हाल ही में यूरोपीय संघ के 28 सदस्य देशों ने भारतीय अल्फांसो (हापुस) आम के आयात पर एक मई से प्रतिबंध लगा रखा है। अब समय आ गया है कि किसानों और सरकार को इसकी चिंता करनी चाहिए।

महंगाई की सबसे ज्यादा मार शहरी गरीबों पर

आज बढ़ती महंगाई से हर आम नागरिक परेशान है लेकिन इसकी सबसे अधिक मार शहरी गरीबों पर पड़ी है। उन्हें अब तक गरीबी उन्मूलन योजनाओं का कोई भी फायदा नहीं मिला है। अब आने वाली नई सरकार के लिए भी शहरी गरीबों की समस्याओं का समाधान निकलना सबसे बड़ी चुनौती होगी।

राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग के चेयनमैन प्रणब सेन के अनुसार कुछ वर्षों में ऊंची मुद्रास्फीति दर के कारण शहरी गरीब आज सबसे ज्यादा कठिन दौर में है। जहां कृषि उत्पादों की कीमतों में वृद्धि के कारण ग्रामीण गरीबों को फायदा हुआ है परन्तु शहरों में बढ़ती बेरोजगारी के साथ औद्योगिक गतिविधियों में नरमी से भी शहरों में रोजगार घट रहे है।

देखा जाए तो आज शहरी गरीबों को बढ़ती महंगाई, बढ़ता किराया–भाड़ा, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और घटते रोजगार के कारण उनका जीना दूभर से हो गया है। ❑

दुनिया में तीन अरब इंटरनेट यूजर

संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2014 के अंत तक 3 अरब इंटरनेट यूजर हो जाएंगे। जिनमें से दो तिहाई विकासशील देशों में होंगे इसके अलावा मोबाइल कनेक्शन भी साल के अंत तक बढ़कर सात अरब हो जाएंगे। वर्ष 2014 के अंत तक विश्व के 44 प्रतिशत घरों में इंटरनेट कनेक्शन होगा। ❑

47 देशों ने बनाई काले धन पर शिकंजे के लिए सहमति

अब बैंकिंग गोपनीयता व्यवहार को समाप्त करने की दिशा में एक और कदम बढ़ाते हुए स्विट्जरलैंड तथा भारत समेत 47 देशों ने कर मामलों में सूचनाओं के स्वतः आदान–प्रदान पर सहमति जताई है। ओईसीडी के तत्वाधान में बीते दिनों 47 देशों ने 'कर मामलों में सूचनाओं के स्वतः आदान–प्रदान पर घोषणा' विषय पर मुहर लगा दी है। यह कदम जहां भारत के लिए उत्साहवर्धक है जो स्विट्जरलैंड पर वहां के बैंकों में भारतीयों के कथित तौर पर रखे गए काले धन के बारे में जानकारी साझा करने के लिए दबाव डालता रहा है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) के अनुसार 47 देशों ने सूचनाओं के स्वतः आदान–प्रदान पर एकल नियंत्रण मानक क्रियान्वयन को लेकर प्रतिबद्धता व्यक्त की है साथ ही देशों ने जिन मानकों पर सहमति जताई है, उससे बैंक से जुड़ी गोपनीय गतिविधियों पर लगाम लगाने में मदद मिलेगी। साथ ही इससे सुनिश्चित हो सकेगा कि वे किसी भी देश में कर चोरी करने वालों तथा वित्तीय अपराधियों के बारे में सूचना का आदान–प्रदान करेंगे। जैसा कि विगत है 120 लाख करोड़ रपए काला धन भारत का विदेशों में जमा होने का अनुमान है काला धन वापिस पर 60 साल तक आयकर से मिल सकती है मुक्ति। ❑

काले धन का ब्योरा देने के 'मूड' में नहीं स्विट्जरलैंड सरकार

भारत में स्विट्जरलैंड के राजदूत लाइनस वॉन कैसलमुर ने कहा कि चोरी के आंकड़ों के आधार पर काले धन के बारे में सूचना देने को लेकर उनके देश में एक तरह से 'राष्ट्रीय स्तर पर विरोध' हो रहा है। स्विस राजदूत ने कहा कि भारत को उनके देश के साथ सहानुभूति रखनी चाहिए खासकर इस यूरोपीय देश में रखे काले धन के बारे में पूर्ण सूचना कब दी जाएगी, इसकी समय सीमा को लेकर। कैसलमुर के अनुसार स्विट्जरलैंड के बैंकिंग नियमों में हाल के बरसों में बदलाव हुआ है और उन्हें इस मोर्चे पर कुछ विकास की उम्मीद है। उन्होंने कहा, 'हम देखते हैं कि पिछले 5 या 10 साल में स्विस बैंकिंग में भारी बदलाव हुए हैं। अब हम बेदाग होकर निकले हैं। स्विस बैंक साफ होकर निकले हैं और यह समस्या अब नहीं आएगी। ❑

वृद्धि दर घटकर निचले पर गिरी

कच्चे तेल तथा प्राकृतिक गैस के उत्पादन में गिरावट से देश के आठ बुनियादी उद्योगों की वृद्धि दर वित्त वर्ष 2013–14 में घटकर दशक भर के निचले स्तर 2.6 प्रतिशत पर पहुंच गई है। पिछले वर्ष 12–13 में बुनियादी उद्योग ने 6.5 फीसद की वृद्धि दर्ज की थी। विशेषज्ञों का कहना है कि ये आंकड़े औद्योगिक उत्पादन में संभावित सुस्ती के संकेतक हैं। रेटिंग एजेंसी इक्रा के अनुसार 'साल दर साल आधार पर वस्तुओं के निर्यात में कमी तथा बुनियादी उद्योगों में सुस्ती मार्च, 2014 में औद्योगिक उत्पादन में गिरावट का संकेत हैं।' वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार 2013–14 में कच्चे तेल और प्राकृतिक गैस का उत्पादन क्रमशः 0.2 व 13 फीसद घट गया। दूसरी ओर कोयला, पेट्रोलियम रिफाइनरी उत्पाद तथा सीमेंट क्षेत्र के उत्पादन की वृद्धि दर घटकर 0.8 फीसदी, 1.7 फीसदी व 3 फीसदी रह गई। ❑

नेताओं द्वारा म्युचुअल फंडों में भारी निवेश

देश में एक तरफ चुनाव का दौरा है तो दूसरी ओर सरकार और नियामक आम आदमी को म्यूचुअल फंडों में निवेश के लिए जागरूक करने का प्रयास कर रहे हैं। लोकसभा चुनाव लड़ रहे राजनीतिज्ञों द्वारा दिए गए हलफनामे के विश्लेषण से पता चलता है कि राजनेताओं ने म्यूचुअल फंडों में अच्छा खासा निवेश किया है। जिसमें सोनिया गांधी, राहुल गांधी व अरुण जेटली, वरुण गांधी, अमर सिंह, शाजिया इल्मी, ज्योतिरादित्य सिंधिया, अंबिका सोनी व शशि थरूर भी शामिल हैं। इसके अतिरिक्त राजनीति के मैदान में नए–नए उतरे इन्फोसिस के पूर्व कार्यकारी वी बालकृष्णन, पूर्व बैंकर मीरा सान्याल, भारतीय फुटबाल टीम के पूर्व कप्तान भाईचुंग भूटिया तथा फिल्म अभिनेत्री हेमा मालिनी ने भी म्यूचुअल फंडों में निवेश किया हुआ है।

भाजपा के प्रधानमंत्री पद के दावेदार नरेंद्र मोदी, भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह, पूर्व सेना प्रमुख वीके सिंह, समाजवादी पार्टी के मुखिया मुलायम सिंह यादव तथा भाजपा नेत्री उमा भारती और आम आदमी पार्टी प्रमुख अरविंद केजरीवाल ऐसे लोकसभा प्रत्याशी हैं जिन्होंने म्यूचुअल फंडों में कोई निवेश नहीं किया है। म्यूचुअल फंड विभिन्न निवेशकों मसलन आम लोगों, बैंकों व कारपोरेट से निवेश जुटाते हैं और इस राशि का निवेश आगे शेयरों व बांडों में किया जाता है। निवेशकों का धन जिन प्रतिभूतियों में निवेश किया गया है उनके प्रदर्शन के आधार पर उन्हें रिटर्न मिलता है। ❑

उद्योग जगत को नई सरकार से बड़ी उम्मीदें

देश में आम चुनाव सम्पन्न होने को है साथ ही देश में बनने वाली नई सरकार से उद्योग जगत को बड़ी उम्मीदें हैं। किसी सरकार से उम्मीद के मामले में यह दो दशक के उच्चतम स्तर पर है। उद्योग संगठन एसोचैम द्वारा कंपनियों के मुख्य कार्यकारियों पर किए गए एक सर्वेक्षण में यह जानकारी प्राप्त हुई। सर्वेक्षण में शामिल अधिकारियों की उम्मीदें दो दशक के उच्चतम स्तर पर बताई गयी है।

नई सरकार के कामकाज संभालने के कुछ महीनों के भीतर में जिनकी उम्मीदें लगाई गई है उनमें अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने, महंगाई को नियंत्रित करने, ब्याज दरों के साथ ही बेरोजगारी में कमी लाना भी शामिल है। सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों जैसे शेयर बाजार, उद्योग, व्यापार, बहुस्तरीय संस्थानों और विदेशी निवेशकों को नई सरकार से बहुत अधिक अपेक्षाएं हैं। इसके अलावा विदेशी राजनयिकों की उम्मीदें भी नई सरकार से बहुत अधिक है क्योंकि वे भारत के साथ आर्थिक संबंध को और मजबूत बनाना चाहते हैं। रिपोर्ट में यह भी चेताया गया है कि बहुत अधिक अपेक्षाएं रखना भी ठीक नहीं है।

चुनाव परिणाम अनुमान के अनुरूप नहीं आने पर यह बहुत नुकसानदेह होगा क्योंकि इसका सीधा विपरीत प्रभाव पड़ेगा। देश में जारी आम चुनाव में भाजपा नीत राजग के सत्ता में आने का अनुमान लगाया जा रहा है। सर्वेक्षण में देश के विनिर्माण, वित्त, रीयल एस्टेट बैंकिंग और आईटी क्षेत्र के करीब 450 मुख्य कार्यकारी अधिकारियों ने भाग लिया है। सर्वेक्षण में मुंबई, दिल्ली, बेंगलुरू, अहमदाबाद, कोचीन, कोलकाता, चंडीगढ़, हैदराबाद, और देहरादून आदि शहरों को शामिल किया गया था। ❑

नई सरकार के लिए चुनौती होगी महंगाई व राजकोषीय घाटा

देश में लगातार बढ़ रही महंगाई और राजकोषीय घाटा नई सरकार के लिए बड़ी चुनौती होगी। भारत की विकास दर को लेकर अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष (आईएमएफ) ने यह आंशका जताई है। आईएमएफ के भारत मे वरिष्ठ प्रतिनिधि थामस जे रिचर्डसन के अनुसार यूँ तो भारत की आर्थिक तरक्की को लेकर आईएमएफ काफी आशान्वित है लेकिन ऊंची महंगाई दर और राजकोषीय घाटा गंभीर चुनौती बनकर खड़े हैं। महंगाई की वजह से सारे समीकरण गड़बड़ा रहे हैं। उन्होंने कहा कि राजकोषीय घाटा कम होने का नाम नहीं ले रहा है। वित्त वर्ष 2013–14 में इसकी जीडीपी के 4.6 फीसद के स्तर पर उतर जाने का अनुमान लगाया गया था। लेकिन समाप्त वित्त वर्ष के पहले 11 महीनों में ही यह लक्ष्य को चूक गया। आईएमएफ भारत की आर्थिक वृद्धि दर को लेकर उत्साहित लगता है। फिर भी चालू वित्त वर्ष में भारत की वृद्धि दर 5.5 फीसद और अगले वित्त वर्ष में 6.25 फीसद तक पहुंच सकती है। समाप्त वित्त वर्ष 2013–14 में भारतीय अर्थव्यवस्था में 4.9 प्रतिशत वृद्धि की उम्मीद है। ❑

महंगा पड़ेगा आम का स्वाद

गर्मी में आम का स्वाद लेना हर व्यक्ति को अच्छा लगता है परन्तु बेमौसम बरसात के कारण इस बार आम का स्वाद अब महंगा पड़ेगा। उद्योग संगठन एसोचैम के अनुसार इस वर्ष आम और महंगा हो सकता है क्योंकि देश की कुल आम पैदावार में 20 फीसद तक की कमी आ सकती है। इसका कारण पिछले महीने बेमौसम बरसात से कुछ राज्यों में फसल का बर्बाद होना बताया जा रहा है। एसोचैम के अनुसार संयुक्त अरब अमीरात, ब्रिटेन, सऊदी अरब, कतर, कुवैत, बांग्लादेश और अन्य देशों से बढ़ते निर्यात आर्डर के कारण घरेलू उपभोक्ताओं को आम की उपलब्धता की कमी का सामना करना पड़ सकता है। मार्च के आरंभ में बेमौसम बरसात के कारण आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में फलों को भी नुकसान हुआ है। इससे आम की कीमतों में तेजी रह सकती है क्योंकि इन पांच राज्यों से आम की आवक कम होने की संभावना है। देश के कुल आम उत्पादन में इन राज्यों का योगदान दो तिहाई है। आम का निर्यात पिछले तीन वर्षों में 27% बढ़कर वर्ष 2012–13 में 267 करोड़ रपए का हो गया जो निर्यात 2010–11 में 164 करोड़ रपए का था। इसके कारण भी आम की घरेलू आपूर्त्ति प्रभावित हुई है और जिससे कीमतों में तेजी आई है। भारत के आम के लिए शीर्ष निर्यात गंतव्य संयुक्त अरब अमीरात है जहां करीब 61 % भाग का निर्यात होता है। ❑

महंगाई से निजात दिलाएगी नई वैज्ञानिक तकनीक

देश में रोजमर्रा की खाने–पीने की वस्तुओं की महंगाई को लेकर बढ़ती चिंता के बीच कृषि वैज्ञानिक फल–सब्जियों को अधिक दिन तक संरक्षित रखे जाने की नई किस्मों और तकनीक पर काम कर रहे हैं। इससे फसल बाद होने वाले नुकसान को कम करने में मदद मिलेगी। फल–सब्जियों की महंगाई का एक प्रमुख कारण फसल निकलने के बाद होने वाला भारी नुकसान है। उचित रख–रखाव के अभाव साथ ही मौसम बिगड़ने की वजह से देश में हर साल औसतन 30 से 35 प्रतिशत तैयार फल एवं सब्जी बर्बाद हो जाते हैं। कृषि वैज्ञानिक इस समस्या से निपटने के लिए जहां एक तरफ फल–सब्जी की ऐसी किस्मों और तकनीक पर काम कर रहे हैं जिन्हें ज्यादा दिन तक संरक्षित रखा जा सकता है वहीं नियंत्रित परिवेश में फल सब्जियां उगाने की नई तकनीक 'एयरोपोनिक्स' एवं 'हाइड्रोपोनिक्स' पर भी काम जारी है जिनमें परम्परागत खेत की जरूरत नहीं होगी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के उप महानिदेशक (बागवानी) डा. एनके कृष्ण कुमार ने यह भी कहा कि किसानों और उपभोक्ताओं के बीच बिचौलियों का होना भी महंगाई के लिए जिम्मेदार है तथा परिवहन व्यवस्था एवं कोल्ड स्टोरेज जैसी ढांचागत सुविधाओं की कमी से भी आपूर्त्ति पर असर पड़ता है। उन्होंने कहा, 'हम फल–सब्जी के जल्दी खराब होने की स्थिति से निपटने के लिए काम कर रहे हैं। टमाटर की हमने ऐसी किस्म विकसित की है जिसमें किसी भी बीमारी से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता है। यह ज्यादा कड़ा (हार्ड) रहता है जिसके कारण इसे ज्यादा दिन तक संरक्षित रखा जा सकता है। सामान्य रूप से टमाटर 7 से 8 दिन में खराब हो जाता है लेकिन नई किस्म को 20 से 25 दिन तक संरक्षित रखा जा सकता है।' इसी तरह शिमला मिर्च के लिए आईसीएआर ने तकनीक विकसित की है जिससे ज्यादा दिन तक इसे रखा जा सकता है। जहां सामान्य रूप से शिमला मिर्च का भंडारण 5 से 6 दिन तक किया जा सकता है वहीं नई तकनीक के जरिए इसे 20 दिन तक रखा जा सकता है। इसके तहत छोटे पतले प्लास्टिक में इसे लपेटकर रखा जाता है। केला और आम के मामले में भी आईसीएआर ने कदम उठाया है जिसके कारण इन्हें लंबे समय तक संरक्षित रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त गैर परंपरागत क्षेत्रों में फल–सब्जी की उपलब्धता बढ़ाने पर भी ध्यान दिया जा रहा है। ❑

भारतीय उपभोक्ताओं का बढ़ा भरोसा

अनुसंधान फर्म नील्सन के वैश्विक सर्वे में यह बात सामने आई है कि भारत में उपभोक्ताओं का विश्वास मौजूदा वित्त वर्ष की पहली तिमाही में छह अंक बढ़ा है और 2012 की चौथी तिमाही के बाद उपभोक्ताओं में आशावाद का यह उच्चतम स्तर है। सर्वे के अनुसार भारत में 68 प्रतिशत शहरी मानते हैं कि देश मंदी के दौर से गुजर रहा है और इसमें से आधे से अधिक यानी 54 प्रतिशत को उम्मीद है देश अगले 12 महीने में इस मंदी से बाहर निकल जाएगा।

वही अर्थशास्त्री अदिति नैयर ने कहा देश के लिए चुनौतियां कम नहीं हुई है, पर इसे एक अच्छी शुरूआत के रूप में देखा जाना चाहिए। हालांकि काफी कुछ मानसून पर निर्भर करेगा। ❑

दिल्ली सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर

हाल ही में डब्ल्यूएचओ ने वायु प्रदूषण को लेकर 91 देशों के 1600 शहरों पर डाटा आधारित अध्ययन रिपोर्ट जारी की। जिसमें चौकाने वाला परिणाम सामने आया। रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली दुनिया का सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर है। 'ऐम्बिएंट एयर पल्यूशन' नाम से इस रिपोर्ट को जारी किया गया है। दिल्ली की हवाओं में PM 2.5 (सांस के साथ अंदर जाने वाले पार्टिकल, 2.5 माइक्रोन्स से छोटे पार्टिकल) का कॉन्सनट्रेशन सबसे ज्यादा (153 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर) है। जबकि एशिया के अन्य सघन आबादी वाले शहरों में भी दिल्ली से कम वायु प्रदूषण है। वही कराची में यह 117 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर है, बीजिंग में 56 और शंघाई में 36 है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानक के अनुसार PM 2.5 का कॉन्सनट्रेशन प्रति घन मीटर 10 माइक्रोग्राम से ज्यादा नहीं होना चाहिए। PM 10 (अपरिष्कृत पार्टिकल, 10 माइक्रोन्स से छोटे पार्टिकल) का कॉन्सनट्रेशन डब्ल्यूएचओ के मानक से 14 गुणा ज्यादा है। दिल्ली में PM10 का कॉन्सनट्रेशन 286 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर है। पाकिस्तान के पेशावर में यह 540, जबकि रावलपिंदी में 448 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर है। सेंटर फॉर साइंस एंड इन्वाइरनमेंट की अनुमिता राय चौधरी ने कहा कि डब्ल्यूएचओ का नया विवरण भारत में स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं की पुष्टि करता है। उन्होंने कहा, बीमारियों से जुड़े वैश्विक आंकड़ों के अनुसार भारत में वायु प्रदूषण मृत्यु का पांचवां सबसे बड़ा कारण है। जिसके कारण छोटे कण हमारे फेफड़ों के भीतर जाते हैं और सांस तथा हृदय संबंधी समस्या पैदा करते हैं। इनसे फेफड़े का कैंसर भी होता है। ❑

60 करोड़ भारतीय खुले में शौच करते हैं

संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 60 करोड़ लोग खुले में शौच करते हैं। भारत सरकार ने भी इसे बड़ी शर्म की बात के रूप में कबूल किया है। जबकि पूरे विश्व में 100 करोड़ लोग अभी खुले में शौच के लिए जाते हैं।

जिनीवा में हाल ही में जारी रिपोर्ट 'प्रोग्रेस ऑन ड्रिंकिंग वॉटर ऐंड सैनिटेशन 2014' में कहा गया कि वैश्विक रूप से भारत ऐसा देश बना हुआ है, जहां सबसे अधिक लोग खुले में इस काम के लिए जाते हैं। यह संख्या करीब 60 करोड़ बताई गई, जो चौंकाने वाली है।

यूनिसेफ और डब्ल्यूएचओ द्वारा संयुक्त रूप से तैयार रिपोर्ट में कहा गया है कि विश्वभर में खुले में शौच करने वाले 100 करोड़ लोगों में से 82 प्रतिशत लोग केवल 10 देशों में रहते हैं। इस मामले में सबसे अधिक संख्या वाले लोगों का देश होने के बावजूद भारत उन देशों में शामिल नहीं है जो इस समस्या को कम करने के लिए उल्लेखनीय प्रगति कर रहे हैं। ❑

5 सालों में चुनाव पर खर्च हुए 1.5 लाख करोड़ रुपए

देश में महंगाई, बेरोजगारी, शिक्षा उद्योग जगत परेशान है वही हाल ही में एक नई अध्ययन रपट जारी की गई है जिसमें कहा गया है कि पिछले पांच साल में देश में हुए विभिन्न चुनावों में डेढ़ लाख करोड़ रपए से ऊपर की राशि खर्च की गई और इसमें से आधे से अधिक धन 'बेनामी स्रोतों' से प्राप्त हुआ है। सेंटर फार मीडिया (सीएमएस) द्वारा कराया गया यह अध्ययन ऐसे समय में आया है जब विभिन्न राजनीतिक दल इस बार के लोकसभा चुनावों में एक दूसरे पर काले धन का इस्तेमाल करने का आरोप लगा रहे हैं। 7 अप्रैल को शुरू यह चुनाव 12 मई तक चलेगा। निर्वाचन आयोग ने काले धन के प्रयोग पर निगरानी तेज करते हुए देशभर में बड़ी मात्रा में नकदी और अन्य प्रतिबंधित चीजें बरामद की हैं। सीएमएस के अध्ययन के मुताबिक, पिछले पांच साल में भारत में विभिन्न चुनावों के दौरान 1,50,000 करोड़ रपए से अधिक धन खर्च किया गया। सीएमएस के चेयरमैन एन. भास्कर राव के अनुसार 'यह एक मोटा अनुमान है। इस भारी भरकम राशि में से आधे से अधिक रकम काला धन है। चुनावों के लिए काले धन का इस्तेमाल हमारे देश में सभी प्रकार के भ्रष्टाचार का जनक है।' सीएमएस की रपट में कहा गया है कि डेढ़ लाख करोड़ रपए में से 20 प्रतिशत या 30,000 करोड़ रपए चालू लोक सभा चुनावों में खर्च किए जाने का अनुमान है। इस कुल राशि का एक तिहाई या 45,000–50,000 करोड़ रपए राज्यों के विधान सभा चुनावों में खर्च किए गए। रिपोर्ट के मुताबिक, करीब 30,000 करोड़ रपए पंचायतों के चुनावों पर, 20,000 करोड़ रपए मंडलों के लिए, 15,000 करोड़ रपए नगर निगमों के लिए और 10,000 करोड़ रपए जिला परिषदों के लिए खर्च किए गए। रिपोर्ट में कहा गया है, 'लोकसभा चुनावों में मीडिया प्रचार अभियान (25 प्रतिशत) और सत्तारूढ़ पार्टियों द्वारा चुनाव पूर्व खर्च (20–25 प्रतिशत) का इसमें अहम हिस्सा है। अध्ययन के मुताबिक, 'छोटे चुनावों में, चीजें अलग होती हैं। मीडिया पर खर्च बहुत कम होता है और मंडलों व पंचायतों में रैलियों पर खर्च एक तरह से न के बराबर होता है।' उन्होंने दावा किया कि स्थानीय चुनावों में राजनीतिक दलों द्वारा खर्च 10 प्रतिशत से कम होता है, जबकि लोकसभा चुनाव में यह 20 प्रतिशत होता है। ❑

भारत-चीन अमरीका से ज्यादा आगे बढ़ रहे हैं : बराक ओबामा

अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा आजकल भारत–चीन की बढ़ती प्रगति से खासा चिंतित है। बराक ओबामा ने एक निजी भाषण में कहा कि भारत, चीन और जर्मनी जैसे देश अमरीकी व्यापार को प्रतिस्पर्धा देने के लिए अपने बच्चों को अधिक से अधिक शिक्षित कर रहे हैं। उन्होंने कहा वक्त के साथ अर्थव्यवस्था भी बदल गई है। इसकी वजह वैश्वीकरण और नई प्रौद्योगिकी का आना है। अब समय आ गया है अमरीका को भी भारत–चीन–जर्मनी की तरह अपने कौशल को बढ़ाने की जरूरत है। ❑

भारतीय कंपनियों में बढ़ा उत्साह

वैश्विक परामर्श कंपनी ग्रांट थोर्नटन ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि भारतीय कंपनियों में आम चुनावों के बाद ज्यादा करोबार अनुकूल प्रशासन आएगा। भारतीय कंपनियों का उत्साह वर्ष 2012 के बाद से सबसे ऊंचा है। देसी कंपनियों में 89 प्रतिशत को अगले 12 महीने में भी अच्छी संभावना है। ❑

अफगानिस्तान का संघर्ष

अफगानिस्तान तालिबान को रोकने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पिछली मई में ओबामा ने अमेरिका के चौथे राष्ट्रपति जेम्स मेडिसन की एक चेतावनी को दोहराते हुए कहा था कि कोई भी देश लगातार युद्ध के माहौल में अपनी स्वतंत्रता को बनाए नहीं रख सकता, लेकिन बावजूद इसके वह अफगानिस्तान में लंबे समय तक सैन्य संघर्ष के पक्ष में हैं। यह पाकिस्तान के जनरलों के लिए एक अच्छी खबर है, लेकिन अमेरिका, अफगानिस्तान, भारत अथवा अन्य क्षेत्रीय हितों के पक्ष में बिल्कुल नहीं है।

■ **ब्रह्म चेलानी**

वर्ष 1979 से अब तक तमाम युद्धों को झेल चुके अफगानिस्तान में राष्ट्रपति चुनाव अब अपने अंतिम दौर में है। इस अभाग्यशाली देश के लिए ऐसा पहली बार है जब शांतिपूर्वक सत्ता का हस्तांतरण होने जा रहा है। पिछले माह पांच अप्रैल को तालिबान हमले और तमाम धमकियों के बावजूद बहादुर अफगानिस्तान की जनता ने बड़ी तादाद में मतदान किया और अपने साहस का परिचय दिया। अब अंतिम दौर की लड़ाई चुनाव के पहले चरण में आगे निकलने वाले दो उम्मीदवारों के बीच है और परिणाम मई के आखिर तक आने की उम्मीद है। 35 वर्षों तक चले खून–खराबे के बाद अफगानिस्तान की जनता देश में शांति को लेकर निराश थी। वर्तमान राष्ट्रपति हामिद करजई के बाद सत्ता में आने वाली नई सरकार को इनके लिए काम करना होगा और देश के निराश हो चुके विभिन्न समूहों और राजनीतिक वगरें के बीच दूरी पाटनी होगी तथा राष्ट्रीय सद्भावना को प्रोत्साहित करना होगा।

इसके लिए नई सरकार के साथ–साथ बहुभाषी और बहुसंस्कृति वाली राष्ट्रीय सेना को मजबूत करना होगा। इसी तरह अगले साल निष्पक्ष और स्वतंत्र संसदीय चुनावों को भी संपन्न कराने की चुनौती होगी। इस कार्य में विदेशी ताकतों की भूमिका महत्वपूर्ण होगी, जो अफगानिस्तान के आंतरिक हालात पर अपना प्रभाव रखते हैं। इनमें से दो वाह्य कारक अफगानिस्तान की राजनीतिक और सुरक्षा हालात के लिहाज से सर्वाधिक महत्वपूर्ण होंगे। इन कारकों में 2014 के बाद अमेरिका के नेतृत्व वाले नाटो यानी उत्तर अटलांटिक सहयोग संगठन बल और पाकिस्तान का हस्तक्षेप मुख्य होगा। इन देशों की अफगानिस्तान में अभी भी सैन्य उपस्थिति है और चरमपंथियों तथा उनकी कार्य प्रणाली पर इनका नियंत्रण है।

अफगानिस्तान के आंतरिक मामलों में पाकिस्तान के हस्तक्षेप को तभी रोका जा सकता है जब ओबामा प्रशासन दूरदर्शी नीति के तहत पाकिस्तान को रोकी गई सामान्य मदद के साथ–साथ आर्थिक सहायता को फिर से शुरू कर दे। अफगानिस्तान में अमेरिकी और नाटो सेनाओं की भविष्य में मौजूदगी की बात से फिलहाल ओबामा ने अपना रुख बदल लिया है और लंबे समय तक रुकने की दृष्टि से वह अपनी सेना के लिए स्थायी ठिकाने तलाश रहे हैं।

उन्होंने 2009 में मिस्र में घोषणा की थी कि हम अफगानिस्तान में अपनी सेना को रोकने के पक्ष में नहीं हैं और न ही हम

वहां किसी सैनिक ठिकाने की योजना बना रहे हैं। हालांकि अब उनका हृदय परिवर्तन हो चुका है और वह उचित संख्या में अमेरिकी नेतृत्व वाले सशस्त्र नाटो बलों को रखने के पक्षधर हैं। ऐसा इसलिए ताकि विपरीत हालात में सैन्य आपरेशनों को संचालित किया जा सके।

दूसरी ओर अमेरिकी राष्ट्रपति को अपने ही देश में इस बात के लिए राजनीतिक हमलों का सामना करना पड़ रहा है कि वह करजई को द्विपक्षीय सुरक्षा समझौते के लिए तैयार नहीं कर सके। यदि ऐसा होता तो अफगानिस्तान में अमेरिकी ठिकाना बनाए रखने का वैधानिक आधार मिल जाता। वास्तविकता यही है कि इराक में लंबे नियंत्रण के बाद भी वहां अमेरिकी सेनाओं की कोई मौजूदगी नहीं है। **कहा यही गया था कि अफगानिस्तान में अमेरिकी सैन्य ठिकानों को विशेष मजबूती देने के लिए वहां लंबे समय तक टिकना आवश्यक है, क्योंकि अमेरिका को यहां इतिहास की सबसे लंबी लड़ाई लड़नी होगी। यह भी सही है कि अमेरिकी दबाव में द्विपक्षीय समझौते के लिए काबुल और वाशिंगटन अपनी शर्तों को अंतिम रूप दे चुके थे, लेकिन यह निर्णय बाद में आने वाली नई सरकार के लिए छोड़ दिया गया। हालांकि सच्चाई यही है कि करजई को यह डर था कि यदि उन्होंने ऐसा कुछ किया तो अफगानिस्तान के इतिहास में वह दूसरे शाह शुजा के तौर पर गिने जाएंगे।**

सन् 1839 में ब्रिटिश सरकार के कठपुतली के तौर पर शाह शुजा नियुक्त हुए थे, लेकिन तीन वर्ष बाद ही वह पद से हटा दिए गए और उनकी हत्या कर दी गई। यह प्रथम आंग्ल–अफगान युद्ध के समय की बात है।

अब ओबामा के पास सीमित विकल्प हैं, लेकिन इसके लिए उन्हें इंतजार करना होगा और अफगानिस्तान के नए राष्ट्रपति को इस समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार करना होगा। वह आज तक इस बात को नहीं समझ सके हैं कि आखिर क्यों उनके देश ने इस युद्ध की शुरुआत की। इससे न तो राजनीतिक उद्देश्य पूरे हुए और न ही सैनिक। वर्ष 2001 में युद्ध की शुरुआत से ही अमेरिका ने अफगानिस्तान में बड़ी तादाद में सैनिकों की तैनाती की, लेकिन दूसरी ओर यह देश आतंकवादियों का स्वर्ग बना रहा। **किसी भी देश में आतंकवाद और अलगाववाद को कभी भी खत्म नहीं किया जा सकता जब तक कि इसे सीमा पार से मिलने वाले समर्थन और मदद को रोका नहीं जाता। इस संदर्भ में अफगानिस्तान को दोहरा संघर्ष झेलना पड़ा – एक तरफ अमेरिकी सेनाओं का हस्तक्षेप था तो दूसरी ओर पाकिस्तान द्वारा नागरिक सेनाओं को संरक्षण दिया गया।** ओबामा की रणनीति पूर्ण युद्ध की बजाय सीमित प्रभाव वाले लघई की है, लेकिन इसके लिए वह अमेरिकी नीति के दोहरे रवैये को बदलने को तैयार नहीं।

वास्तव में अफगानिस्तान में सीमित संख्या में अमेरिकी बलों की मौजूदगी से वाशिंगटन की पाकिस्तानी जनरलों पर निर्भरता बढ़ेगी और उसे अपने ठिकानों की सुरक्षा के लिए समझौता करना होगा। वाशिंगटन की योजना पाकिस्तान को अफगानिस्तान में अपने सैनिक ढांचे को मजबूत करने के लिए अतिरिक्त मदद देने की है। इसमें कई सौ बारूदी प्रतिरोध का सामना करने वाले वाहन यानी एमआरएपी को मुहैया करना होगा। इसके लिए अमेरिका पाकिस्तान में ड्रोन हमलों को रोकने को भी तैयार हो गया है। 2010 में पाकिस्तान में 122 ड्रोन हमले किए गए जबकि 2013 में यह घटकर 26 रह गए और दिसंबर के बाद अब तक कोई भी ड्रोन हमला नहीं किया गया है। यहां तक कि अमेरिका ने अफगानिस्तान तालिबान पर एक भी हवाई हमले, ड्रोन हमले अथवा जमीनी हमले नहीं किए हैं। नागरिक सेनाओं के खिलाफ भी कोई हमला नहीं किया गया जिसका विस्तार बलूचिस्तान प्रांत तक है। पाकिस्तान के ट्राइबल क्षेत्रों से लेकर उत्तर वजीरिस्तान तक अमेरिकी ड्रोन हमले रोक दिए गए हैं। हालांकि यहां पाकिस्तानी तालिबानों का काफी वर्चस्व है।

जो बात अधिक अखरने वाली है वह है आगामी वर्ष की शुरुआत से ही काबुल को दी जाने वाली मदद में कटौती की अमेरिकी योजना। इससे अफगानिस्तानी सुरक्षा बलों के लिए खतरा पैदा हो जाएगा, जो कि अफगानिस्तान तालिबान को रोकने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पिछली मई में ओबामा ने अमेरिका के चौथे राष्ट्रपति जेम्स मेडिसन की एक चेतावनी को दोहराते हुए कहा था कि कोई भी देश लगातार युद्ध के माहौल में अपनी स्वतंत्रता को बनाए नहीं रख सकता, लेकिन बावजूद इसके वह अफगानिस्तान में लंबे समय तक सैन्य संघर्ष के पक्ष में हैं। यह पाकिस्तान के जनरलों के लिए एक अच्छी खबर है, लेकिन अमेरिका, अफगानिस्तान, भारत अथवा अन्य क्षेत्रीय हितों के पक्ष में बिल्कुल नहीं है। ❑

रपट

मतदान को प्रेरित करेगा स्वदेशी जागरण मंच

वैश्वीकरण के युग में पश्चिमी सभ्यता हमारे देश की संस्कृति पर प्रभावी होती जा रही है। देश की संस्कृति के बचाव के लिए इस पर चिंतन करना आवश्यक है। – सतीश चन्द्र

देश की लोकसभा के गठन में शत प्रतिशत मतदान को संभव बनाने के लिए स्वदेशी जागरण मंच (हिमाचल) मतदाताओं को प्रेरित करने जुटेगा। मंच के सदस्य लोगों के बीच मतदान की अहमियत को लेकर जागरूकता को बढ़ाने का प्रयास करेंगे।

स्वदेशी जागरण मंच की परवाणू में आयोजित बीते अप्रैल माह की बैठक में यह निर्णय लिया। परवाणु की वेद मंदिर धर्मशाला में हुई जिला इकाई की बैठक जिला संयोजक भगवान सिंह ठाकुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस दौरान स्वदेशी को भारत में बढ़ावा देने को लेकर भी मंथन किया गया, जिसमें उपस्थित सदस्यों ने अपने विचार रखे। मंच की बैठक के मुख्य वक्ता रहे राष्ट्रीय संगठक सतीश चन्द्र ने कहा कि वैश्वीकरण के युग में पश्चिमी सभ्यता हमारे देश की संस्कृति पर प्रभावी होती जा रही है। देश की संस्कृति के बचाव के लिए इस पर चिंतन करना आवश्यक है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण विदेशी सामान के प्रयोग का विरोध करने का आग्रह किया।

उन्होंने मंच से जुड़े सदस्यों से आह्वान किया कि इस बार के चुनाव में मतदान को शत–प्रतिशत तक पहुँचाने के लिए जनता के साथ संपर्क बनाते हुए उन्हें मतदान के लिए प्रेरित करने का कार्य करें।

इस अवसर पर कसौली मंडल कार्य– कारिणी का विस्तार किया गया। बैठक में नगर संघ चालक धनीराम वर्मा, नगर कार्यवाहक राजन ठाकुर, पवन राव, राज कुमार घई, बाबू लाल गोयल, प्रमोद शर्मा, केतन पटेल, पवन वर्मा, ओंकार जसवाल, सुधीर राही, चमन गोयल, सीएस राणा, राकेश शर्मा, ताराचंद ठाकुर एव अन्य लोग उपस्थित रहे। ❑

विदेशी पूँजी के एजेंटों ने यह गलत प्रचार चलाया स्वदेशी जागरण मंच के पीछे प्रेरणा वास्तविक स्वदेश भक्ति की नहीं है। देशी पूंजीपतियों ने अपने निजी लाभ के हेतु मंच के कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित किया है। विदेश से आने वाली जिस वस्तु का बहिष्कार किया जाएगा उस वस्तु को बनाने वाले देशी उद्योगपति को उस वस्तु पर चाहे जितना मुनाफा लेने की खुली छूट मिल जाएगी। यह प्रचार दबी जुबान से बड़े पैमाने पर चलाया जा रहा है। 'उत्पादन खर्चा घोषित करो' इस मांग के कारण इस दुष्प्रचार की हवा ही निकल जाती है। हमारी यह मांग दोनों पर – विदेशी तथा देशी उत्पादकों पर लागू है। उसके कारण उपभोक्ताओं का शोषण करने की दोनों की क्षमता समाप्त हो जाती है। और एक असमर्थनीय गलत धारणा का अपने आप निराकरण हो जाता है।

– राष्ट्रऋषि दत्तोपंत ठेंगड़ी (सर्वसमावेशी स्वदेशी पुस्तक से)